Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चिन्तामणि

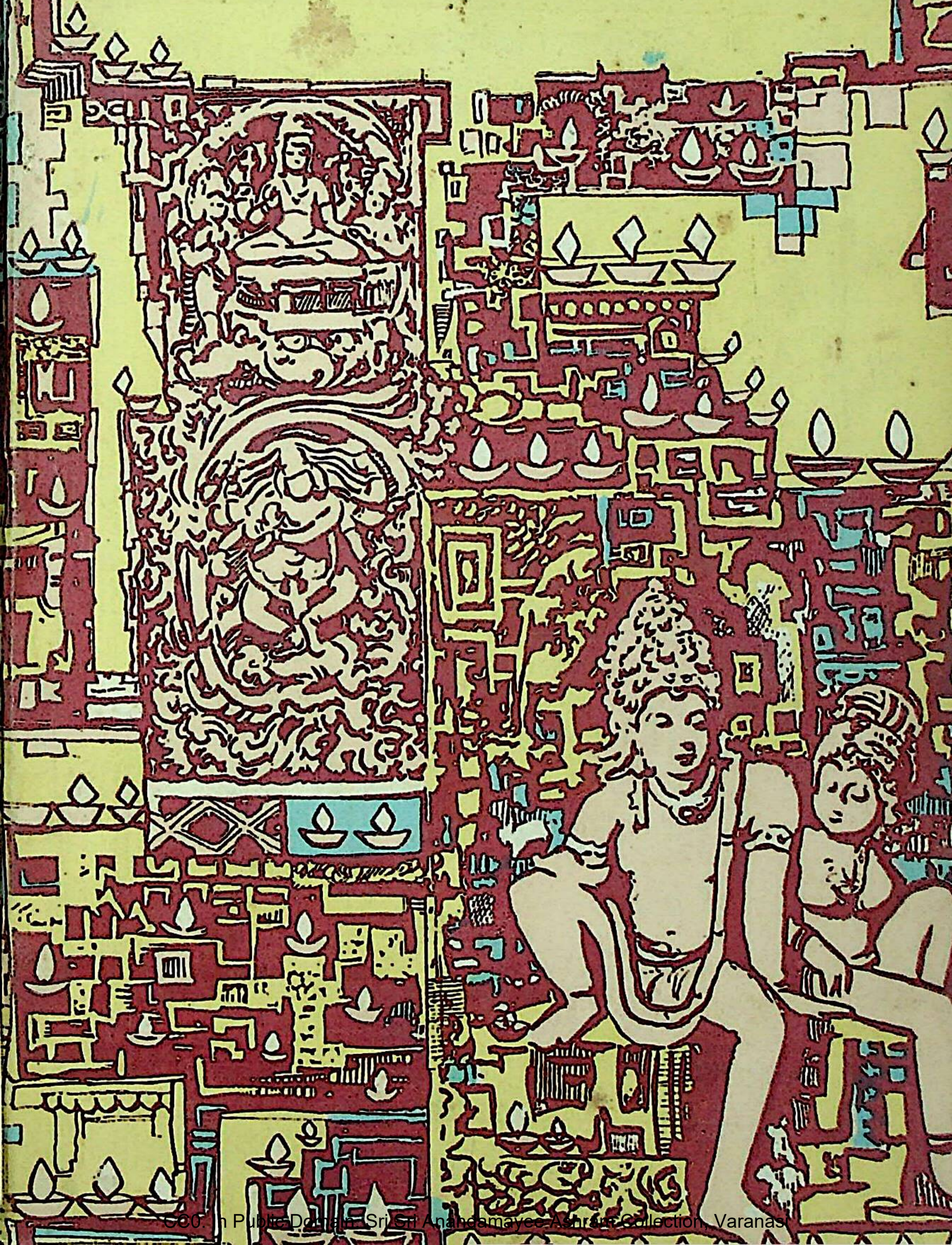

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नूपुरैर्विलसत्पादं कौस्तुभप्रभया युतम् ॥
द्युमत्किरीटकटककटिसूत्राङ्गदायुतम् ।
सर्वाङ्गसुन्दरं हृद्यं प्रसादसुमुखेक्षणम् ।
सुकुमारमभिध्यायेत् सर्वाङ्गेषु मनो दधत् ॥

—श्रीमद्भा० ११.१४.४०-४१

कमलादि कर हैं चरण विलसित नित्य नूपुरकी प्रभा ।
कान्ति कौस्तुभकी गलेमें जगमगाती जो लुभा ॥
कंगन किरीट औ करधनी भुजबंद बाँहों में सदा ।
हृद्य चितवन ध्येय मेरा रूप मृदु यह सर्वदा ॥

—भगवान् श्रीकृष्ण

शुभ कामनाओं सहित

नरोत्तमदास भाऊ ज्वैलर्स

४३२ लेमिंगटन रोड
बम्बई-४

के

सौजन्यसे

तारः "दासनरोत्तम"

फोन नं० ३५६३३३

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

- प्राचीन-अर्वाचीन ज्ञान-विज्ञान की प्रतिनिधि
- पुरुषार्थ प्रतिपादक
- प्रसन्न-गम्भीर पत्रिका

चिन्तामणि

संस्थापक : अनन्तश्रीविभूषित पू. पा. स्वामी श्री अखण्डानन्द जी सरस्वती महाराज

वर्ष ४ अंक १

★

सम्पादक :
ब्र. प्रेमानन्द 'दादा'
विश्वम्भर नाथ द्विवेदी
आनन्दकानन
सी. के. ३६/२०
वाराणसी - १
फोन : २६८३

वार्षिक मूल्य : चार रुपये मात्र
एक प्रति : सवा रुपया मात्र

विदेश में

वार्षिक मूल्य : ८ शिलिंग

व्यवस्थापक
सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट,
'विपुल' २८/१६
रिजरोड, मलाबार हिल
बम्बई - ६

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

★ विषयक्रम

श्री लक्ष्मी-पूजन		१
निगम-मन्थन-किसीसे मत डरो		११
श्री हिताद्वैत : एक विवेचन	पू० श्री करपात्री जी महाराज	१४
संशयमें भी विश्वास	स्वामी श्री रामसुखदास जी	१७
मृद्भक्षण-लीला	स्वामी श्री अखण्डानन्द सरस्वती	२५
एक संस्मरण	श्री सीतारामशरणदास जी महाराज	३५
शांकर भाष्य : एक अध्ययन	श्री स्वामी सच्चिदानन्देन्द्र सरस्वती	३६
फलत्यागका फल	विनोवा	४५
बाबा श्री रामदास जी महाराज करहेवालेके मुखारविन्दसे		४६
एक जिज्ञासा		४८
क्या मिट्टी और घड़ा—दोनों सत्य हैं ?	पि० सुब्रह्मण्य भट्ट	४९
स से मी रा	श्री पशुपति झा	५४
प्रशंसा पानेकी वासना		५६
न मैं, न तुम, दफ्तर गुम		५८
जैन-दर्शनमें अहिंसा	श्री दयानन्द भार्गव एम० ए०	५९
कहाँ ढूँढ रहे हो ?		६५
दीपदान-महापर्व	श्री कान्तानाथ पाण्डेय 'राजहंस'	६६
ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या	श्री रामनाथ दीक्षित मयूरवासी	६८
गलेका हार		७४
बात दो टूक (कविता)	श्री सुदर्शन सिंह	७६
भक्तिमती कवयित्री बनीठनी जी	श्री व्रजवल्लभशरण वेदान्ताचार्य	७८
अपनी ओर देखो		८३
श्री रामानन्दाचार्यके उदार सिद्धान्त	स्वामी श्री जयरामदेव जी	८४
प्रतीत्यसमुत्पाद	श्री लक्ष्मण त्रिवेदी सभाचार्य	९१
वह यहाँ नहीं है		९७
महाराजश्रीके कुछ पत्र		९८

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उठो जागो और लग जाओ	महाभारतसे	१०५
प्रगति या अगति ?	श्री कृपाशंकर शुक्ल	१०७
ईश्वर कहाँ है ?		१०९
कर्मयोगीके चार व्रत	प्राध्यापक पं० नलिन म० भट्ट	११०
हमारा जीवन-दर्शन	स्वामी श्री स्वरूपानन्द जी महाराज	११२
विषय महाविष-निवृत्ति	श्री ओङ्कारदत्त जी शास्त्री	११५
सफलताका रहस्य		११८
पीपलका पत्ता	श्री ब्रह्मप्रकाश जी	११९
पकड़ो प्यारे हाथ	पू० महाराजश्री	१२५
श्रीमद्भागवतमें चीर-हरण और रासलीला	श्री शिवनारायण तिवारी	१२६
स्वयंप्रकाशमें असन्तोष कहाँ ?		१३०
अभिमानी अन्धा	श्री नन्दकिशोर झा	१३१
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति	श्री निगमानन्दजी परमहंस	१३२
ध्यानकी कुञ्जी		१३५
निष्ठाका चमत्कार		१३६
लोक-सुख और परमार्थ-सुख		१३६
सतिगुर प्रसाद	श्री कोकिल साईं	१३७
भक्त शिशु हैं, ज्ञानी युवा		१३८

CHINTAMANI

[ENGLISH]

Are you doing your bit for the nation ?	Swami Akhandanand Saraswati	141
The Glory of Smritis	Rajguru Hari Datt Shastri	143
To a Sadhaka	Madhava	147

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्रीकृष्ण-सन्देश

धर्म, अध्यात्म, साहित्य एवं संस्कृति-प्रधान मासिक

उद्देश्य : धर्म, अध्यात्म, भक्ति, साहित्य एवं संस्कृति-सम्बन्धी लेखों द्वारा जनताको सुपथपर चलनेकी प्रेरणा देना और जनमानसमें सदाचार, सद्विचार, राष्ट्रप्रेम, आस्तिकता, समाजसेवा, सर्वाङ्गीण समुन्नति तथा युगके अनुरूप कर्तव्यबोधको जाग्रत् करना 'श्रीकृष्ण-सन्देश' का शुभ उद्देश्य है।

★

प्रवर्तक
ब्रह्मलीन श्रीजुगलकिशोर बिरला

● परामर्श-मण्डल

स्वामी श्रीअखण्डानन्द सरस्वती
श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार
डॉ० श्रीभुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'
श्रीजनार्दन भट्ट एम०ए०
श्रीहितशरण शर्मा एम०ए०

● प्रबन्ध-सम्पादक

देवधर शर्मा

● सम्पादक

पाण्डेय रामनारायणदत्त शास्त्री, साहित्याचार्य

● स० सम्पादक

विश्वम्भरनाथ द्विवेदी

●

वार्षिक शुल्क : ७.००
आजीवन शुल्क : १५१.००

प्रकाशक :
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ, मथुरा
दूरभाष : ३३८

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नवम्बर, '६९
वर्ष : ४ अङ्क : १

चिन्तामणि

श्रीलक्ष्मी-पूजन

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे
नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्।
इष्णन्निषाणामुं म इषाण
सर्वलोकं म इषाण॥
(यजुर्वेद ३१।२२)

'हे पुरुषोत्तम ! श्री और लक्ष्मी तुम्हारी पत्नी हैं। दिन और रात्रि तुम्हारे पार्श्व भाग हैं। आकाशमें छिटके हुए तारे तुम्हारे रूपकी रश्मियाँ हैं। अश्विन अर्थात् द्युलोक और पृथिवीलोक तुम्हारे मुखके विकास हैं। हम जानते हैं कि तुम हमें चाहते हो। इसलिए अवश्य हमारा अभ्युदय और निःश्रेयस चाहो। हमारा लोक-परलोक और सर्वलोक तुम श्रेष्ठ बना दो। सर्वलोकमें मेरा आत्मभाव हो जाय।'

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

१. **'श्री'** शब्दका अर्थ अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग सम्पदा है। यह पुरुषोत्तमके आश्रित रहती है, उनका आश्रय भी है। इसीके कारण कोई भी आश्रयणीय हो जाता है।

२. **'लक्ष्मी'** कहते हैं—शुभ लक्षणको, जिसके कारण मनुष्य दर्शनीय हो जाता है। विष्णु भगवान्‌के वक्षःस्थलपर यही लक्ष्मी शोभायमान हैं। यह अन्तरङ्ग-बहिरङ्ग सौन्दर्यके रूपमें विराजमान रहती हैं। औदार्य, सौन्दर्य, सौशील्य, वात्सल्य आदि इन्हींके विशेष रूप हैं।

३. ये दोनों भगवान्‌की पत्नी हैं, इसका अर्थ यह है कि ये उनके वशमें हैं। जहाँ भगवान् हैं, वहीं श्री, लक्ष्मीका नित्यनिवास है।

४. **'दिन और रात्रि पार्श्वभाग हैं'** इसका अभिप्राय यह है कि काल भी पुरुषोत्तमका एक अवयव है। जगत्‌की उन्नति और अवनति उन्हींके अधीन है।

५. **'नक्षत्र रूप हैं'** इसका आशय यह है कि इस संसारमें जितना प्रकाश है, वह सब प्रभुके तेजसे ही भासमान है।

६. **'मुख विकास'**का अर्थ है, विस्तार। अभिप्राय यह है कि देश प्रभुका अवयव है, वही सबके आधार हैं।

वे हमारे हितैषी हैं और हमारा हित कर सकते हैं। वे हमारा ऐसा हित करें, जिससे लोक-परलोक सर्वलोकमें कहीं भी हमारा राग-द्वेष न हो एवं सर्वात्मभाव, सर्वात्मबोधकी प्राप्ति हो।

● ★ ●

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

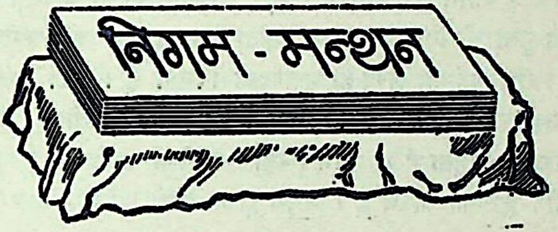

किसीसे मत डर

यथा द्यौश्च पृथिवी च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा विभेः ॥ १ ॥

जैसे द्युलोक और पृथिवी लोक न किसीसे डरते हैं और न किसीसे रिक्त होते हैं, इसी प्रकार ओ मेरे प्राण ! तुम किसीसे मत डरो ।

टिप्पणी : वेद भगवान् कहते हैं कि पृथिवी और अन्तरिक्षमें आकाशके विशाल विस्तारमें कितने ही भयङ्कर-से-भयङ्कर हिंस्र प्राणी आते-जाते रहते एवं आँधी-तूफान उठते-बैठते रहते हैं; परन्तु वे अपने आधार एवं आश्रयसे न डरते हैं और न उनका आधार और आश्रय ही उनसे डरता है । जहाँ आश्रय और आश्रितका सम्बन्ध है, वहाँ भय, हानि एवं रिक्तताका कोई सम्बन्ध नहीं है । भक्त और भगवान्का ऐसा ही सम्बन्ध है । जो भगवान्से एक हो चुका है, उस भक्तमें सब और सबमें वह भक्त है । इसलिए न वह किसीसे उद्विग्न होता है और न किसीको उद्विग्न करता है । अपने प्राणको आश्वासन देते हैं कि ओ मेरे आत्मा ! इस दृष्टिकोणको अपनाकर तू मत डर !

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यथाहश्च रात्री च न विभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा विभेः ॥ २ ॥

'जैसे दिन और रात्रि किसीसे डरते नहीं हैं। सतत निरन्तर अपने मार्गपर चलते रहते हैं, न रिक्त होते है, वैसे ही मेरे प्यारे आत्मदेव! तुम भी न किसीसे डरो, न किसीको छोड़ो।'

टिप्पणी : वर्तमानकाल निरन्तर भूत, भविष्यमें बँटता जा रहा है। टुकड़े-टुकड़े होता हुआ भी निरन्तर चलता रहता है। उसके खण्ड-खण्डमें अखण्डका प्रकाश है। सच पूछो तो खण्ड ही अखण्डको दिखाते हैं। क्या उसकी खण्डतामें सब कुछ नहीं रहता है? कोई वस्तु उसे छोड़कर चली जाती है? अर्थात् तब भी वह भरा ही रहता है। 'निर्भय रहो' कहनेका अभिप्राय है कि भय ही विनाश और ह्रासका कारण है। निर्भय होकर चलो।

यथा सूर्यश्च चन्द्रश्च न विभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा विभेः ॥ ३ ॥

जैसे सूर्य और चन्द्रमा निर्भय रहते हैं और विश्वको प्रकाश एवं चाँदनी देनेकी क्रिया निरन्तर करते रहते हैं; कभी डरते नहीं हैं और कभी किसीसे हीन नहीं होते; मेरे प्यारे आत्मदेव! मेरे प्राण! तुम इसी प्रकार मत डरो। अर्थात् तुम लोगोंपर प्रकाश और शीतलता, ज्ञान तथा रसकी वर्षा करते चलो। डर छोड़ दो। तुम्हें कोई नहीं छोड़ेगा।

यथा ब्रह्म च क्षत्रं च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा विभेः ॥ ४ ॥

'जैसे ब्राह्मण और क्षत्रिय कभी किसीसे डरते नहीं हैं और न अपने स्वभावसिद्ध सद्गुणसे रिक्त होते हैं, वैसे ही, ओ रे! मेरे प्राण! तू किसीसे डरे मत। अपनेमें हीनताका अनुभव भी मत करे।

टिप्पणी : ब्राह्मण प्रज्ञाप्रधान है और क्षत्रिय बलप्रधान। दोनों ही औचित्य-निर्णय और बलप्रयोगमें निर्भय होते हैं। ब्राह्मण धर्माधर्मको निर्भय करके और क्षत्रिय युद्धभूमिमें शत्रुका संहार करके अपनेमें हीनताका अनुभव नहीं करते। प्रज्ञा और बलके उपयोगसे वे उनसे रिक्त नहीं हो जाते, प्रत्युत भर जाते हैं। उपयोगसे अभ्यास और अभ्याससे गाढ़ता। ठीक इसी प्रकार हमारा जीवन निर्भय होकर निर्दिष्ट पथपर बढ़े, बढ़ता रहे।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यथा सत्यं चानृतं च न विभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा विभेः ॥ ५ ॥

'जैसे सत्य और झूठ, परमार्थ और संसार अपने स्थानपर निर्भय टिके रहते हैं और कभी रिक्त नहीं होते, इसी प्रकार मेरे प्राण! तुम भी डरो मत।'

टिप्पणी : आकाश और नीलिमा, सत्य और प्रतीति, अधिष्ठान और अध्यस्त निरन्तर भासमान रहनेपर भी एक-दूसरेसे भयभीत अथवा हीन (रहित) नहीं होते हैं। यह बात दूसरी है कि भासमात होनेपर भी एक बाधित है और दूसरा अबाधित। न अधिष्ठानके बिना अध्यस्तता है और न अध्यस्तके बिना अधिष्ठानता है। दोनों भरे-पूरे निर्भय रहते हैं। मेरे प्राण! तुम भी इसी प्रकार निर्भय रहो!

यथा भूतं च भव्यं च न विभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा विभेः ॥ ६ ॥

'जैसे भूत बीतता जाता है और भविष्य भी निरन्तर आता जाता है; दोनों ही न डरते हैं और न रिक्त होते हैं। उनमें भय, निष्क्रियता, प्रवाहावरोध अथवा निर्विषयता कभी नहीं होती। इसी प्रकार मेरे प्राण! तुम कभी मत डरना।'

टिप्पणी : निर्द्रव्य काल भी निरवयव है और अधिष्ठानमें कल्पित और उससे अभिन्न है। जब काल और कालका अत्यन्ताभाव—दोनोंका अधिष्ठान एक ही है तब वस्तुतः काल अपने अत्यन्ताभावका विरोधी नहीं, अत्यन्ताभाव-स्वरूप ही है। द्रव्य सहित काल ही सावयव है। उसीमें भूत, भविष्यके भेद भासते हैं; परन्तु वे निर्भय रूपसे ही द्रव्यको ग्रसते और बनाते हैं। दोनोंकी सन्धि नहीं है, इसलिए वर्तमान केवल प्रतीतिमात्र है। फिर तो भूत-भविष्यका विभाग भी प्रतीतिमात्र है। ऐसे होनेपर भी काल निर्भय रहता है और कभी खाली नहीं होता। इसीसे कहा गया है कि प्राण! तू निर्भय रह। जन्म-मरणके आतङ्कसे मुक्त हो जा। [अथर्ववेद २।३।१५]

•

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्री 'हिताद्वैत' : एक विवेचन

अनन्त श्री करपात्री जी महाराज

(६)

श्री वृन्दावनकी रसकुञ्ज, नित्यनिकुञ्ज लीलामें जो रसास्वादन करनेवाला भोक्तारूप है, वह दिव्य प्रेमात्मक ही है। वह तृताभिलाषमय दिव्य प्रेम ही उज्ज्वलनीलरूपसे अभिव्यक्त होता है। जैसे विषयकी प्यासरूप तृष्णा निन्दनीय है तथापि परमात्माकी प्यासरूप तृष्णा भक्तिरूप मानी जाती है, वैसे ही शुद्ध प्रेम विषयक अभिलाषका रसास्वादक रसिक भी भगवद्रूप ही है। यह आस्वादक-रूप उज्ज्वलनील दिव्य चन्द्रमा अनन्तानन्त आनन्दसिन्धुसे समुद्भूत् है। यह राशि-राशि कन्दर्पके लावण्यसे भी ललित है, इसलिए यह निरतिशय (जिससे बढ़कर और कोई न हो) और निरुपाधिक (जिसमें किसी अन्य वस्तुका संसर्ग या उपस्थिति न हो) परम प्रेमास्पद है, यह बात अत्यन्त स्पष्ट है। इसी प्रकार शुद्ध प्रेममय भोग्यरूप भी परमौदार्यमय है, इसलिए उसकी गौर-तेजोमयता भी अर्थात् रसिक प्रेम श्याम है और रस्य उदार प्रेम गौर है। निरतिशय उदारता ही उसका स्वरूप है। चित्सार-सर्वस्वरूप प्रकाश आस्वाद्य और आस्वादक दोनोंमें ही रहकर सब प्रकाशोंसे बढ़-चढ़कर है। वही दिव्य दम्पती प्रेम आदिके रूपमें नित्य अनन्त ज्योति है। वही प्रकट और अप्रकट सभी लीलाओंमें परस्पर विलक्षण धाम, नाम, रूप, लीला और उसके लिए उचित परिकरादि-विशिष्ट होकर देदीप्यमान होता है। वही तत्त्व भगवान्‌की भिन्न-भिन्न अभिव्यक्तियोंके रूपसे और किंबहुना सम्पूर्ण प्रपञ्चके रूपसे भी रसिकोंके द्वारा अनुभव किया जाता है; क्योंकि स्वयं भगवान् ही निरतिशय, निरुपाधिक परम-प्रेमके पात्र हैं। प्रेम आनन्द आदि रूप हैं, सर्वहिततम हैं; अधिक क्या, वही सर्वरूप हैं। (शतपथ १३।६।१)।

किसी-किसीका कहना है—कि "वैदिक कालसे ही वैष्णवधर्मके सम्बन्धमें अनेकों परिवर्तन हुए हैं—'इदं विष्णुः०', 'विष्णुर्गोपाः०' इत्यादि विष्णुके व्यापक रूप और गोपरूप दोनोंके ही वर्णन प्राप्त होते हैं। वही देवाधिदेव नारायण और यज्ञादिके रूपमें भी प्रसिद्ध हैं। वेदकी ही एकायन शाखाका आश्रय लेकर पाञ्चरात्र आदि वैष्णवागमोंने भगवान्‌की उपासना प्रकट की है। वैखानस, औखेय और कृष्णयाजुष आगमने भी उसीको व्यक्त किया है। इन

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आगमोंने हिंसामय यज्ञोंके स्थानमें अहिंसामय यज्ञोंका प्रवर्तन किया। यह परिवर्तन और प्रवर्तनरूप विचारस्वातन्त्र्य ही वैष्णवधर्मकी विशेषता है।" इस प्रकारकी बातें विकासवादके प्रभावसे निकली हैं; क्योंकि यह सुनिश्चित है कि तन्त्र, आगम और पुराण प्रभृति, वैदिकधर्मका केवल व्याख्यान ही करते हैं। वे किञ्चित् भी निर्मूल, नूतन कल्पना नहीं करते। रसिकोंकी मान्यता है कि भागवत-रस निगमकल्पतरुका ही गलित फल है और शुक-मुखके संयोगसे वह अमृत-रसाभिषिक्त हो गया है। अतः आधुनिकोंकी कल्पना-जल्पना निःसार है। अव्याकृत ब्रह्मधाममें जो दिव्य दम्पतिमय, रसमय प्रकाश है, वही सम्पूर्ण प्रकाशोंका भी प्रकाशक है और वही रसतत्त्व रसिकोंकी रसनाके निकुञ्जमें नित्य विहार करता है। उनकी वचन-रचना सहज अनुरागसे पूर्ण होती है और वे उस तत्त्वको राशि-राशि स्फुरणाओंके शृंगारसे सँवार देते हैं। प्रेमाञ्जनसे रंगकर वेणुगीतादि पीयूष रसका आस्वादन करते हैं।

किसी-किसीका कहना है—कि सभी रसिक भगवान्‌को प्रेमपरवश मानते हैं, परन्तु यदि प्रेम भगवान्‌की शक्ति अथवा गुण है तो भगवान्‌का उसके वशमें होना युक्तियुक्त नहीं है; क्योंकि शक्ति शक्तिमान्‌के और गुण गुणीके निश्चित रूपसे अधीन रहते हैं। परन्तु यह भी ध्यान रखनेयोग्य है कि प्रेमकी पराधीनता भी स्वीकार करनेयोग्य नहीं है; क्योंकि जिस हृदयरूप आधारमें प्रेमका उदय होता है, उसको वह अपने अधीन करके ही होता है। यह प्रेम भगवान्‌में नित्य उदित है, इसलिए वह सर्वदा भगवान्‌को वशमें करके ही रहता है। यही कारण है कि भगवान्‌की प्रेमपरवशता स्वाभाविक, नित्य एवं पूर्ण है।

किसी-किसीका मत है—कि भगवान् प्रेमके दाता हैं इसलिए भगवान् स्वतन्त्र हैं और प्रेम परतन्त्र। परन्तु यह मत भी ठीक नहीं है; क्योंकि जिसके पास प्रेम होगा वही तो प्रेमका दाता होगा। पासमें प्रेमकी कुंजी न हो तो प्रेम क्या देगा? जब हम भगवान्‌को प्रेमका धनी मान लेते हैं तो प्रेमके दाता होनेपर भी उनके प्रेमाधीन होनेमें कोई असंगति नहीं रहती; क्योंकि जो प्रेमका धनी है वह प्रेमपरवश होकर ही कृपापूर्वक प्रेमदान करता है। इससे यह सिद्ध होता है कि प्रेम ही वह तत्त्व है जिसके अधीन भगवान् और उनके भक्त रहते हैं। अतः प्रेम ही स्वतन्त्र वस्तु है। भगवान्, भक्ति और भक्त उसके विशेष परिणाम हैं अथवा अवस्थाविशेष हैं या रूपान्तर हैं। दृश्य-अदृश्य सभी पदार्थ प्रेमके ही विशेष विलास हैं। वही अनेक रूपसे क्रीड़ा कर रहा है। प्रेम ही परमाराध्य भगवत्तत्त्व है और प्रेम ही परम ज्ञानका प्रयोजक एवं ज्ञानघन आत्मा है। क्योंकि वही निरतिशय, निरुपाधिक परम प्रेमास्पद है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति' इत्यादि श्रुति उसको रूपान्तरमें भी स्वीकार करती ही है। वही सब सुखोंका हेतु होनेके कारण 'हित' है। गुरु और इष्टका अभेद विख्यात है ही।

तत्त्वदृष्टिसे निरुपाधिक ब्रह्म ही रस एवं आनन्दादि शब्दोंके द्वारा कहा जाता है। वही निरुपाधिक परम प्रेमास्पद होनेके कारण आत्मा भी है। भगवान् आदि तो केवल उसके रूपान्तर ही हैं। प्रेम और भगवान्का अभेद होनेपर ही इन सब वर्णनोंकी संगति बैठ जाती है। उसीकी एक अवस्था प्रेम है, इसलिए भगवान्का प्रेमके वशीभूत होना भी युक्तिसंगत है। प्रेम भगवान्का आत्मस्वरूप ही है, इसलिए उसके वशमें होना भी अपने वशमें होना है। ऐसा नहीं होगा तो परवश होनेपर भगवान्में भी दुखीपनेकी प्राप्ति होगी। मनु जीके क्या ही युक्तियुक्त वचन हैं—'जो कुछ परवश है वह दुःख है। जो कुछ आत्मवश है वह सुख है।' प्रेम भगवान्का स्वरूप ही है, इसलिए उसकी परवशता दुःख नहीं है। यदि ऐसा न हो, प्रेम स्वतन्त्र वस्तु हो तो वही परम तत्त्वरूप होगा, भगवान् न आश्रय होंगे और न किसीको प्रेमका दान ही कर सकेंगे। इस प्रकार वस्तुतः अभेद होनेपर भी औपाधिक भेदको स्वीकार करके भेद-व्यवहारकी संगति भी लग जाती है। औपाधिक भेदाभेद पक्षको स्वीकार करके ही प्रेमके लिए अपेक्षित एकत्व और द्वित्व आदि भी सम्पन्न हो जाता है। यही कारण है कि प्रेम और प्रियतमकी एकता भी सिद्ध हो जाती है। लोक-व्यवहारमें प्रेमका आश्रय प्रेमी अलग होता है और प्रेमका विषय अलग—यह तो प्रसिद्ध ही है। तत्त्व-दृष्टिसे देखा जाय तो वहाँ भी अधिष्ठान रूपसे एकता ही है तथापि वह व्यावहारिक रूपसे प्रेमी और प्रियतम रूपके अभेदका प्रयोजक नहीं है। जैसे स्वर्णकी वास्तविक एकता उसके कटक-कुण्डलादि व्यावहारिक भिन्न-भिन्न आकारोंकी विरोधिनी नहीं हैं। यह कहना भी कुछ बड़े आश्चर्यकी बात नहीं है कि जो तत्त्व सर्वातीत है, वही सर्वव्यवहारका विषय है; क्योंकि ब्रह्मका यही तो लक्षण है। संक्षेपशारीरकमें कहा गया है कि जो चित्तत्व सबकी वाणी और मनसे परे है, वही सबकी वाणी और मनके व्यवहारका विषय है।[1] प्रेमरसकी प्रीति-मय जड़ता (स्तम्भादि) ही वृन्दावनादि भगवद्धामके रूपसे व्यक्त होती है। प्रेमरसके चापल्यादि भाव ही वहाँकी सखीके रूपमें मूर्तिमान् होते हैं।

कौषीतकी उपनिषद्के इन्द्र-प्रतर्दन संवादमें ब्रह्मको ही 'हिततम' कहा गया है। 'हित' उसको कहते हैं जो वस्तु हमारे लिए उन्नति, कल्याण आदिमें उप-कारक हो। वह अनेक प्रकारकी होती है। उनमें जो सर्वातिशायी हित है उसे

१. सकलवाङ्मनसाऽतिगता चितिः सकलवाङ्मनसव्यवहारभाक्।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'संशयमें भी विश्वास'

• स्वामी श्री रामसुखदास जीके मुखारविन्दसे

एक साधु मेरे साथ विद्याध्ययन करते थे। वड़े भावुक। गीताका पाठ और भगवदाराधना करते। एक दिन वड़े दुःखी हुए। रोने लगे। वेचैनी वढ़ गयी। मैंने पूछा—'वात क्या है?' उन्होंने कहा—'पाठ पूजा करते वर्षों हो गये, परन्तु हृदयमें संशय वना है—ईश्वर, धर्म, धरती सवके प्रति। भगवान्ने कहा है कि 'संशयात्मा विनश्यति।' संशयालुका नाश हो जाता है तो क्या मेरा नाश हो जायगा? मेरे हृदयमें तो कहीं विश्वास ही नहीं है।' मैंने उनसे कहा—'मेरे भोले भाई! तुम्हारे हृदयमें भगवान्के 'संशयात्मा विनश्यति' इस वचनपर विश्वास न होता अर्थात् भगवान् और गीता—दोनों पर विश्वास न होता तो मनमें संशय आनेसे यह वेचैनी ही क्यों होती? इस दुःखका अर्थ ही यह है कि तुम भगवान् और गीतापर पूर्ण विश्वास करते हो।

उनका दुःख दूर हो गया।

कभी-कभी मनुष्य अपने मनकी असंगतियोंको नहीं पहचान पाता और केवल नासमझीसे ही दुःखी होता है। •

'हिततम' कहते हैं। इन्द्रने प्रतर्दनसे कहा—'वर माँग लो।' प्रतर्दनने कहा—'आपकी समझमें मनुष्यके लिए जो हिततम है वही मुझे वतलाइये।' इस वरके उत्तरमें इन्द्रने कहा—'मैं ही हिततम हूँ, मेरी उपासना करो।' विचार करनेपर निश्चय होता है कि यहाँ हिततम वस्तु व्रह्म है; क्योंकि शास्त्रदृष्टिसे 'मैं' शव्दका अर्थ तात्पर्यतः व्रह्म ही सिद्ध होता है। वही निरतिशय कल्याणका हेतु और परमोपकारी है।

यह निश्चित है कि प्रेमरसस्वरूप व्रह्मतत्त्व कूटस्थ, एक एवं अद्वितीय है। परन्तु वही अचिन्त्य, दिव्य लीलाशक्तिके द्वारा नित्यनूतन दिव्य प्रेमके रूपमें अभिव्यक्त होता है। उसी शक्तिके कारण उसका आश्रय प्रेमी और उसका विषय प्रियतम भी प्रकाशित होता है। एक ही निर्विभाग चैतन्य प्रेमतत्त्व आश्रयत्व-विषयत्वभागी होकर द्विधा, त्रिधा प्रकट होता है। यह उसी लीलाशक्तिके कारण है। प्रेम प्रतिपल नित्यनूतन, चमत्कारसे परिपूर्ण होकर प्रकट होता रहता है। इसलिए उसको प्रेमकी धारा अथवा प्रेमका प्रवाह कहना भी असंगत नहीं है। प्रत्येक प्रवाह नूतन ही है तथापि न उसका आदि है न अन्त;

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इसलिए उसको अनादि-अनन्त भी कह सकते हैं। इस प्रेमतत्त्वके नित्यनूतन होनेके कारण ही सभी लीलाओंमें रसिकजन दिव्य दम्पति राधाकृष्णको प्रतिदिन, प्रतियाम और प्रतिक्षण नित्यनूतन रूपमें अनुभव करते हैं।

प्रेयसी-प्रियतम नित्य नवनवायमान होते रहते हैं। नया-नया रस, नया-नया रूप-सौन्दर्य, नया-नया लावण्य और नयी-नयी म्रदिमा। प्रतिक्षण स्नेह भी नया-नया, नया-नया पीताम्बर और नया-नया नीलाम्बर। प्रेमघनकी बूँदें भी नयी-नयी। हृदयकी आर्द्रता भी नयी-नयी। महाकवि कर्णपूर आनन्दवृन्दावन-चम्पूमें कहते हैं कि चिदानन्द-सरसी यशोदा मैयाकी गोदमें एक ऐसा नीलकमल खिला जिसको भ्रमरोंने कभी सूँघा नहीं, वायुने जिसके सौरभका अपहरण किया नहीं, जलमें पैदा हुआ नहीं, जल-सीकरोंकी चोट खायी नहीं और उसके पहले कभी, कहीं, किसीने देखा नहीं। धन्य है वह माँ! धन्य है वह बेटा!

अनाघ्रातं भृङ्गैरनपहृत-सौगन्ध्यमनिलै-
रनुत्पन्नं नीरेष्वनुपहतमूर्मीकणभरैः।
अदृष्टं केनापि क्वचन च चिदानन्दसरसो
यशोदायाः क्रोडे कुवलयमिवौजस्तदभवत्॥

वृन्दावनी भक्त कवि इस प्रकार रसास्वादन करते हैं—

नयो नेह नवरङ्ग नयो रस नवल श्याम वृषभानु-किशोरी।
नव पीताम्बर नव चूनरी नयी नयी बूँदन भींजत गोरी॥

यही कारण है कि अनादि, अनन्त, दिव्य, अद्भुत प्रेमघनके मूर्त्तरूप श्री राधामाधवके रसात्मक विहारका नित्य प्रवाह बहते रहनेपर भी आजतक दोनोंमें परस्पर परिचय नहीं हुआ; क्योंकि उनकी नित्य नवनवायमान, अभिराम, आभा, प्रभा, शोभा और कान्तियोंसे तथा वैसे ही सौन्दर्य, माधुर्य, सौरस्य, सौगन्ध्य, वैदग्ध्य और औदार्य आदि गुणोंसे दोनोंके प्रकाशमें विलक्षणताका उदय होता रहता है। इसीसे दोनोंके समन नयनोंसे निहारते रहनेपर भी यह 'वही है, वही है'—इस प्रकार पहचाननेके लिए परस्पर मुखदर्शनपरायण रहते हुए भी परस्पर एक-दूसरेको पहचानना दुर्लभ ही रहता है; क्योंकि प्रेम-सिन्धुमें दोनों ही डूबते-उतराते रहते हैं। इस विषयमें एक संवाद देखिये—

श्री राधारानी अपनी एक सखीसे पूछती हैं—'सुन्दर सखि! यह तो बताओ कि यह कृष्ण कौन है जो अपने नामके श्रवणमात्रसे ही धैर्यको भगा देता है?'

सखी—'अरी बावरी रागिनी! यह क्या पूछती है? तुम सर्वदा उसीके वक्षःस्थलपर क्रीडा करती हो।'

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्री राधारानी—'अरी मुग्धे ! उपहास मत कर अर्थात् मैं उसे सर्वथा नहीं पहचानती।'

सखी—'क्या कहती हो ? अभी-अभी मैंने तुम्हें उसके हाथमें सौंपा था।'

श्री राधारानी—'हाँ-हाँ, ठीक है—ठीक है। आज ही पहले-पहल मेरी आँखोंके आँगनमें बिजलीकी तरह कौंधकर वह चला गया।

संस्कृतकाव्यका रस लीजिये—

कोऽयं कृष्ण इति व्युदस्यति धृतिं यस्तन्वि कर्णे विशन्,
रागान्धे किमिदं सदैव भवती तस्योरसि क्रीडति।
हास्यं मा कुरु मोहिते ! त्वमधुना न्यस्ताऽस्य हस्ते मया,
सत्यं सत्यमसौ दृगङ्गनमगादद्यैव विद्युन्निभः॥

श्री ध्रुवदास जीके सवैयाका आनन्द लीजिये—

न आदि न अन्त बिलास करैं दोउ लाल प्रियामें भई न चिह्नारी।
नयी नयी भाँति नयी छवि कान्ति नयी नवला नव नेह विहारी॥
रहे मुख चाहि दिये चित चाहि परे रसरीति सुसर्व सुहारी।
रहैं इक पास करैं मृदु हास सुनौ ध्रुव प्रेम अकत्थ कहारी॥

महानुभावोंका यह भी कथन है कि दो होते हुए भी एक हो जाना प्रेमानुभूति है। इसके सम्बन्धमें केवल इतना ही कहना है कि यदि दोनों वस्तुतः सत्य होते हुए ही एक होते हैं तो वह एक होना भावना-प्रकर्षजनित ही है। यदि भेद औपाधिक है तो वह ऐक्यानुभूति प्रेमात्मिका है। प्रेमाद्वैतकी अवस्था दो हुए बिना सिद्ध नहीं हो सकती। माधुर्यविवश होकर परस्पर प्रेमके अमृत-समुद्रमें निमज्जन ही प्रेमाद्वैत अवस्था है। द्वैतकी अवस्थामें चैतन्यकी अभिव्यक्ति होती है। छलकते हुए प्रेमसमुद्रमें डूब जाना ही एकता है। क्षण-क्षणमें चैतन्यका उदय होना उसकी नवनवायमानता है। प्रतिक्षण प्रेमसिन्धुमें निमज्जन-उन्मज्जनकी परम्परासे ही विवशता और चेतनताकी परम्परा स्फुरित होती है।

भोक्ता-भोग्यरूप, प्रियतम और प्रेयसी प्रेमोल्लासवश अद्वयभावको प्राप्त हो जाते हैं तब भी लीलोल्लास-विशिष्ट युगलरूपका अनुभव न करनेके कारण व्याकुलता होती है। प्रेमसमुद्रसे फिर युगलरूप प्रकट हो जाते हैं। प्रेमतत्त्व ही प्रेरक है। युगलके रसास्वादनके लिए व्याकुलतावश वही निरुपम सख्यके कारण सखी होकर उनकी परिचर्या करता है। सखीके निरुपम रसामृत-सिन्धुमय हृदयसे ही रसेश्वर-युग्मका प्राकट्य होता है और वहीं पुनः दोनों निमग्न हो जाते हैं। इसलिए यह कहना पड़ेगा कि भक्तोंके हृदयदेशमें पूर्णानुराग

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रससार-सरोवरमें नील-पीत कमलके समान दोनों परस्पर क्रीडा करते हैं। दोनोंका हृदय अभिन्न है। आत्मा और प्राण भी एक हैं।

अथवा यों भी कह सकते हैं कि भोग्यात्मा रासेश्वरी तत्त्व ही वह निरुपम कमल है। सौन्दर्य ही मकरन्द है। उसके निस्यन्दके लोभी हैं—निरुपम मिलिन्द (भ्रमर) नन्द-नन्दन। रसधाम, सुखनिधान होनेके कारण श्री राधा गौर-ज्योति हैं। नित्य-नूतन अभिलाषरूप होनेके कारण भोक्ता माधव नील-ज्योति हैं। प्रेमतत्त्वकी एक यह विशेषता है कि वह सावरण ही शोभायमान होता है। निरावरण होनेपर रसाभास हो जाता है। प्रेम-सम्पुटमें रसिकचक्र-वर्ती श्री विश्वनाथ चक्रवर्तीने क्या ही सुन्दर कहा है—

प्रेमाद्वयो रसिकयोरपि दीप एव
हृद्वेश्म भासयति निश्चलमेव भाति।
द्वारादयं वदनतस्तु वहिष्कृतश्चे-
न्निर्वाति शीघ्रमथवा लघुतां प्रयाति॥

प्रेम एक दीप है जो प्रेयसी-प्रियतमके हृदयमन्दिरको प्रकाशित करता है और निश्चल ही प्रकाशमान रहता है। यदि यह बोलकर मुखद्वारसे वाहर कर दिया जाता है तो शीघ्र ही बुझ जाता है अथवा क्षीण हो जाता है।

इतना होनेपर भी वह सावरण नहीं रखा जा सकता अर्थात् छिपाया नहीं जा सकता; क्योंकि कोई ऐन्द्रियक प्रत्यक्ष, अनुमानसिद्ध अथवा मानसोल्लास-विशेष ही नहीं है। आत्माका स्वरूप ही है। यही कारण है कि प्रेमका इतिहास छिपानेके सहस्र-सहस्र प्रयासकी विफलताका इतिहास है—'कहाँ लौ समानी चन्द हाथन छिपाइबो।'

श्यामाश्यामयुगल, उनका धाम, सहचरियाँ—सभी अपने नामके साथ नित्य ही विराजमान रहते हैं; क्योंकि वे सभी स्वप्रकाश प्रेमरससार-सिन्धुसे प्रकट होनेके कारण निष्कलंक चन्द्ररूप ही हैं परन्तु उनका दर्शन सवको नहीं हो सकता। जिनके नेत्र प्रेमोद्दीप्त हैं, वे ही उनका दर्शन कर सकते हैं। यद्यपि भगवान् सम्पूर्ण प्राणियोंके परम प्रेमास्पद होनेके कारण सर्वाराध्य रूपमें प्रसिद्ध हैं तथापि वही सर्वभजनीय, सर्वाश्रय प्रभु आश्रित होकर स्वात्मरूपिणी राधाकी सेवा करते हैं। सर्वाधार स्वरूप, रससिन्धु होनेपर भी परिचारिणीके समान वे वृषभानुनन्दिनीकी परिचर्या करते हैं; क्योंकि उनका हृदय सख्यभावसे परिपूर्ण है, और जानते हैं कि स्वामिनी अपने आत्माका ही विशेष उल्लास हैं। वैसे तो एक विशुद्ध प्रेमतत्त्व ही वात्सल्य, सख्य आदिके रूपमें भी व्यक्त होता है, तथापि शृङ्गार-रस ही प्रेमरसका सर्वोत्कृष्ट परिपाक है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

किसी-किसीका ऐसा मत है—एक ही नित्य क्रीडापरायण तत्त्व विविध क्रीडाविशिष्ट रसके रूपमें प्रकट होता है। उसीके भिन्न-भिन्न नाम हैं—प्रेम, हित आदि। वही तत्त्व सख्य, वात्सल्य आदिके रूपसे और किंवहुना रसराज शृङ्गारके रूपसे भी अभिव्यक्त होता है। शृङ्गारका स्थायीभाव है–रति। दूसरे स्थायीभाव भी उसीके विवर्त हैं। वस्तुतः सत्कवि अपनी प्रतिभासे उत्पन्न विभावना नामक अलौकिक व्यापारसे अपने काव्योंमें कामभावका ही ऐसा वर्णन करते हैं कि उसीको रसिकजन अलौकिक शृङ्गार आदि रसके रूपमें ग्रहण करते हैं और वर्णन करते हैं। लोक-व्यवहारमें जिन कामभरी चेष्टाओंके दर्शनसे भी हृदय ग्लानि और जुगुप्सासे भर जाता है; कवि और नट उसीको काव्य तथा नाटकोंमें ऐसे सुन्दर रूपमें उपस्थित करते हैं कि उससे लोकोत्तर रसकी सृष्टि हो जाती है। जिन कारण, कार्य और सहकारियोंके योगसे लौकिक रसकी निष्पत्ति होती है, उन्हींको काव्योंमें विभाव, अनुभाव और संचारीभाव कहते हैं। सहृदय सज्जनोंके अनुभवके आधारपर ही उसको स्वयं प्रकाश, चिन्मय, अखण्ड एवं ब्रह्म-सहोदर सिद्ध किया जाता है तथा स्वीकार भी किया जाता है। फिर भी वह रस क्षणिक ही है; क्योंकि वह संवेदन-क्षणके पहले और पश्चात् भी नहीं रहता है। वस्तुतः वह रस सत्कविकी लोकोत्तर प्रतिभाका ही विलास है। वह है कृत्रिम व्यापार, विभावना अथवा साधारणी-करणकी सृष्टि। उस व्यापारके अलौकिक होनेपर भी प्रतिभाजन्य होनेके कारण कृत्रिमता है। विभाव, अनुभाव आदिके द्वारा उसकी अभिव्यंजना भी उसकी कृत्रिमताका हेतु है। इस प्रकार लौकिक रसके व्यक्तिगत और लौकिक होनेपर भी काव्यरस सार्वजनिक और अलौकिक हो जाता है; फिर भी उसकी अनित्यता और कृत्रिमता तो बनी ही रहती है।

यह सब होनेपर भी भक्तिरस प्रतिभाजन्य विभावनाका चमत्कार नहीं है। वह श्रुतिसिद्ध **'रसो वै सः'** रसरूप परमतत्त्व ही है। भगवद्भक्त भगवान्को ही निखिल रसामृत मूर्ति जानते-मानते हैं। प्रेमोपासक नित्यक्रीडा-परायण प्रेमतत्त्वको ही रसस्वरूप मानते हैं। भगवद्रूप होनेके कारण वह नित्य ही होता है। भगवदंश जीवोंके लिए भी वह सहज ही है। श्रुति, पुराण आदि प्राचीन शास्त्रोंमें यह वर्णन नहीं मिलता कि परमतत्त्व किस प्रकार रसरूप है? अग्निपुराण आदिमें जो वर्णन है वह भरतमुनिके अनुसार ही है। भक्ति-रसामृतसिन्धु आदिमें भी भरतमुनिकी रसनिरूपण-प्रणालीके आश्रयसे ही भक्तिरसकी रसरूपताका विवरण है। भरतप्रोक्त रसाभिव्यंजन-प्रणालीकी अपेक्षा इन आचार्योंने कुछ परिवर्तनोंका भी मंजूरीकरण किया है। इसका स्पष्टीकरण प्रीतिसन्दर्भमें है।

CG0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भक्तिरसके आचार्य श्री रूपगोस्वामी, श्री जीवगोस्वामी आदिने भक्तिरसके साधारणीकरणके लिए कविप्रतिभाजन्य विभावन व्यापारको स्वीकार नहीं किया है। उनका कहना है कि भक्तिरसके विभाव आदिका स्वरूप ही ऐसा है कि उससे भक्ति-वासनावासित हृदयमें उसका स्वयं विभावन होने लगता है। इससे भक्तिरसमें लौकिक काव्यरसकी कृत्रिमता नहीं आती। यह तो ठीक है परन्तु विभाव, अनुभावादिसे जन्य होनेके कारण उनकी प्रणाली मान लेनेपर भी एक ऐसी कृत्रिमता आ जाती है जिसका कोई परिहार नहीं है। लौकिक रसके कारण, कार्य और सहकारी ही काव्योंमें उपदर्शित होनेपर विभाव आदि-का रूप ग्रहण करते हैं। जब कारण-कार्य प्रवृत्ति ही अनित्य हैं तब विभावादिसे अभिव्यक्त रसकी कृत्रिमता भी अनिवार्य ही है। काव्यरसके जागरणमें हेतु हैं—रतिके कारण, कार्य और सहकारी, इसलिए वह सामाजिकनिष्ठ ही होता है, अनुकार्य अर्थात् युधिष्ठिर, दुष्यन्त आदि परोक्ष नायक-नायिका आदिमें नहीं होता। अनुकार्यके द्वारा अनुभाव्य रसके रति कारण, कार्य आदि लौकिक ही होते हैं। इसलिए अनुकार्य-निष्ठरस कथमपि काव्यरस नहीं है। परन्तु भक्ति-रस अनुकार्य राधा-कृष्ण, सीता-राम, गोपीजन-वल्लभमें भी है। भगवान् स्वयं रसरूप हैं, इसलिए भगवान्के अनुभाव्य रसके जो रतिसम्बन्धी कारण, कार्य, सहकारी हैं, वे स्वाभाविक ही रसके हेतु हो जाते हैं। वे काव्यरसके समान स्वाभाविक रूपका परित्याग करके और अलौकिक विभावादिका रूप धारण करके रसका रूप ग्रहण नहीं करते। अबतकके निरूपणसे यह सिद्ध हुआ कि भरतमुनिके द्वारा वर्णित परिपाटीसे जो काव्यरस अभिव्यक्त होता है, भगवत्प्रेम-रस उससे अत्यन्त विलक्षण है। काव्यरसके आलम्बनविभावके रूपमें भगवान्के होनेपर रस सामाजिकनिष्ठ ही रहता है; क्योंकि वहाँ भक्तिरसके समान भगवान्का आलम्बनत्व नहीं है। भगवान् भी जब लोकवत् लीला करते हैं, तब उनके रसका अनुभव स्वाभाविक रीतिसे होता है। लोक-व्यवहारमें जहाँ सचमुच एक बालक वात्सल्य-रसका विषय होता है, वह काव्यरसके समान कृत्रिम नहीं होता। यद्यपि वहाँ भी कारण-कार्य और सहकारी लौकिक ही होते हैं। लौकिक रसमें और भगवद्रसमें सहजता ही समान है, अन्य अंशमें कोई समानता नहीं है; क्योंकि भगवान्के द्वारा जो रसास्वादन किया जाता है उसमें रस, रसिक और रसनीयका भेद नहीं होता। इस अंशमें भगवद्रस अलौकिक ही है। वहाँ तो रस ही रसका स्वाद ले रहा है।

लोकव्यवहारमें सीमाएँ संकुचित हैं। अनेकों प्रकारके अन्तराय हैं, इसलिए रसका स्फुरण क्षणिक ही होता है। काव्यरस कृत्रिम होनेके कारण क्षणिक है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भगवत्प्रेमरस न कृत्रिम है, न परिच्छिन्न, इसलिए वह नित्य है। यही कारण है कि उसका स्फुरण भी शाश्वत है। भगवत्प्रेमरस भगवत्स्वरूप ही है। वह अपरिमित, अलौकिक एवं अन्तराय शून्यहोनेके कारण स्वयं विभावित होता है। अर्थात् वह कविप्रतिभाजन्य विभावनामात्र नहीं है। उसके नायक-नायिका आलम्बन, उद्दीपन, सहकारी युधिष्ठिर, दुष्यन्त आदिके समान अविद्यमान नहीं हैं। इसलिए यह रस भगवन्निष्ठ भी है और भक्तनिष्ठ भी; क्योंकि दोनोंका मधुर सम्बन्ध विद्यमान ही है। यही कारण है कि भक्त स्व-परका भेद अनुसन्धान किये विना निर्विघ्न भगवत्प्रेमरसका अनुभव करता है। काव्यक्षेत्रमें ऐसा होना सम्भव नहीं है। यही कारण है कि वहाँ कविप्रतिभाके वैभव विभावनाकी अपेक्षा होती है।

•

श्री हरिसूरिकृत

श्री भक्तिरसायनम्

[संस्कृत-मूलमात्र]

मूल्य : आठ रुपये मात्र

सौ वर्षोंसे दुर्लभ, संस्कृतका अद्भुत ग्रन्थ
जो अब प्रकाशित हुआ है।

आपके लिए

संग्रहणीय

पण्डितोंके लिए विशेष उपयोगी
व्यासोंके लिए अमूल्य रत्न

•

प्रकाशक

सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट
'विपुल'
२८/१६ रिजरोड, बम्बई-६

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सत्साहित्य पढ़िये

१.	माण्डूक्य-प्रवचन	६.००
२.	माण्डूक्यकारिकाप्रवचन [वैतथ्य-प्रकरण]	५.००
३.	श्रीमद्भागवत-रहस्य	२.५०
४.	भक्ति-सर्वस्व	५.००
५.	भगवान्‌के पाँच अवतार	२.००
६.	ईशावास्य-प्रवचन	१.२५
७.	सांख्ययोग	५.००
८.	भक्तियोग	४.५०
९.	पुरुषोत्तमयोग	२.५०
१०.	ब्रह्मज्ञान और उसकी साधना	६.१०
११.	गोपीगीत	३.५०
१२.	भागवत-विचार-दोहन	१.००
१३.	नारद-भक्ति-दर्शन	६.००
१४.	महाराजश्रीका एक परिचय	०.५०
१५.	मुण्डकसुधा	२.५०
१६-१७.	आनन्द-वाणी भाग १-२	०.५०प्रति
१८-२५.	आनन्दवाणी भाग ३-१०	१.००प्रति
२६.	महाराज श्रीका एक परिचय [सिन्धी]	५.२०
२७.	मोहन नी मोहनी [गुजराती]	०.५०
२८.	चरित्र-निर्माण आणि ब्रह्मज्ञान [मराठी]	५.००
२९.	श्रीमद्भागवत-रहस्य [सिन्धी]	२.००
३०.	साधना और ब्रह्मानुभूति	३.५०
३१.	गोपियोंके पाँच प्रेमगीत	०.२०
३२.	श्री उड़ियाबाबाजी और मोकलपुरके बाबा	०.२०
३३.	ज्ञान-निर्झर (श्री डोंगरेजी महाराज)	०.२५
३४.	क्या साधु कुछ राष्ट्रसेवा कर सकते हैं !	०.२०

निम्न पतेपर पत्र लिखकर अपनी रुचिकी पुस्तकें मँगाइये ।

★

सत्साहित्य-प्रकाशन-ट्रस्ट

'विपुल' २८/१६ रिजरोड, मलाबार हिल, बम्बई–६

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

If you want to know about cement ask

ACC

ACC
the hallmark of
top-quality products

ACC is the first manufacturer to have converted otherwise unsuitable limestone into suitable raw material for making cement by employing beneficiation processes, thus ensuring maximum conservation of mineral resources. Over the years, ACC engineers and researchers have pioneered new products utilising indigenous material that would otherwise have gone waste. Quality is an obsession with ACC, prompting them to set up a Research Station in cement and concrete technology that is the first of its kind in India. Technical advice on the uses of cement and concrete is provided free. So if there is anything you want to know about cement—ask ACC.

GREY PORTLAND CEMENT • POZZOLANA CEMENT • BLAST FURNACE SLAG CEMENT • LOW HEAT CEMENT • OILWELL CEMENT • WATERPROOF (HYDROPHOBIC) CEMENT • RAPID HARDENING CEMENT • SILVICRETE WHITE CEMENT

- Refractories (i.e. High Alumina Firebricks) and Refractory Materials.
- Heavy Machinery including rotary kilns, stone crushers, ball and tube mills, conveyor equipment for cement, chemical and other industries.
- Raising of coal.
- Geological Consultancy Services.

ACC THE ASSOCIATED CEMENT COMPANIES LIMITED
THE CEMENT MARKETING CO. OF INDIA LIMITED

CML 8201A

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः ।
अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥

मैं आप लोगोंमें सहृदयता, मानसिक पवित्रता और राग-द्वेषराहित्यकी प्रतिष्ठा करता हूँ । जैसे अवध्य गाय अपने छोटे-से बछड़ेसे स्नेह करती है, वैसे ही आप सब परस्पर एक दूसरेसे प्रेमपूर्ण व्यवहार करें ।

श्रीपूर्णवस्त्रभंडार

२२२ नवी गली, मंगलदास मार्केट

बम्बई—२

बाम्बे डाइंग एण्ड मैन्यूफैक्चरिंग कम्पनी

बम्बई

के

(फेन्ट) कटपीस वस्त्र के थोक विक्रेता

की

शुभ कामनाएँ

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मृद्भक्षण-लीला ★ स्वामी श्री अखण्डानन्द सरस्वती

यशोदा माताकी श्रीकृष्णमें दृढ़ आसक्ति है। इसका लक्षण है—प्रपञ्च-विस्मरणपूर्वक स्नेहमयी श्रीकृष्णाकार-वृत्ति। गोपियोंके द्वारा माखन-चोरी, भाण्ड-भञ्जन आदि दोषा-रोपण करनेपर भी माताके मनमें पुत्रके प्रति दोष-दृष्टिका उदय नहीं हुआ। उसने सब कुछ सह लिया और दोषारोप करनेवाली गोपियोंके हृदयमें भी प्रेमका दर्शन किया। गोपियोंके द्वारा किये हुए दोषारोपमें भी पुत्रके नवनीतास्वादन और चातुरी-विशेषकी कल्पनासे माताके मनमें एक प्रकारकी तृप्तिका उदय हुआ। ठीक इसीके बाद मृद्भक्षण-प्रकरणके उल्लेखका यह आशय है कि जहाँ तक पुत्रके हितकी कल्पना है, वहाँ तक तो रोष नहीं है, प्रत्युत सन्तोष है। परन्तु जहाँ मृद्भक्षणसे शारीरिक रोगरूप दोषोत्पत्तिकी सम्भावना है, वहाँ रोषका उदय भी है। ये दोनों वात्सल्यके ही विलास हैं। कभी-कभी मारमें भी रोष और ताड़नाकी अपेक्षा अधिक स्नेह-वात्सल्य ही रहता है।

श्रीवल्लभाचार्यके इस प्रकरणको ग्यारह श्लोकोंमें वर्णन करके यह सूचित किया गया है कि मनकी ग्यारह वृत्तियोंको निर्दोष करनेके लिए प्रत्येक श्लोकमें एक नवीन ज्ञानका उद्रेक हुआ है। दोष, उसकी निवृत्तिके लिए प्रयत्न, संवाद, आरोपका खण्डन, विषयज्ञानपूर्वक ज्ञानका उत्कर्ष, भय और अन्ततः भीतकी शरणागति। गोपियोंके दोषा-रोपणमें दर्शन-प्रेमकी प्रधानता है और गोपोंके दोषारोपणमें हित-प्रेमकी। माखनचोरीके उपालम्भकी लीलाके अनन्तर मृद्भक्षणके उल्लेखका यह आशय है कि बाह्य जगत्‌के कर्म, भोग एवं उपालम्भका फल भी रजोगुण ही है अथवा धूलि-चर्वणके समान ही है। श्रीकृष्णकी सूचना है कि उन सबसे अच्छा तो यह धूल खाना ही है।

● मृद्भक्षणकी सूचना क्यों ?

प्रश्न यह होता है कि ग्वाल-बालोंने श्रीकृष्णके मृद्भक्षणकी सूचना यशोदा माताको क्यों दी ?

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इसके उत्तरमें निवेदन है कि गोप-बालक श्रीकृष्णके साथ समानताका भाव रखते हैं; क्योंकि इसके विना सख्यरसकी पुष्टि नहीं होती। इसी-लिए वे जैसे अपना दोष देखनेके अधिकारी हैं, वैसे ही श्रीकृष्णके भी। पाँच वर्षकी अवस्था तक माता ही ताड़ना दे सकती है, इसलिए मातासे निवेदन किया। माखनचोरीके उलाहनेमें वात्सल्य-रसका विशेष आस्वादन है और मृद्भक्षण लीलामें विस्मय रसका। 'सिद्धान्त-प्रदीप'कारका कहना है कि गोपियोंके उलाहनेपर माताने दण्ड नहीं दिया तो श्रीकृष्णके मनमें यह विचार हुआ कि माता दण्ड नहीं देगी तो उसके वात्सल्यकी सम्पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं होगी। भगवान्को भक्तकी परवशता चाहिए। इसीमें उनका रस है। मृद्भक्षणके प्रसंगमें माता शिशुके आरोग्यार्थ दण्ड देनेका संकल्प करती है। सूचना देनेवाले ग्वाल-बालोंका भी सख्यभाव वात्सल्य-मिश्रित ही है; क्योंकि मूलमें वलराम-का नाम लिया गया है। वे वड़े भी हैं और सखा भी हैं।

● मृद्भक्षण क्यों ?

श्रीकृष्णके लिए नवनीत और मृत्तिका—दोनों एक ही हैं। दोनों पृथिवीके ही दो रूप हैं। पृथिवीके घर आये हैं, पृथिवीका अंश खायेंगे। तव क्या, पृथिवीका उत्कृष्ट अंश मक्खन खायें और साधारण अंश धूल न खायें ? ऐसा नहीं हो सकता। मीठा-कड़वा दोनों प्रिय हैं; क्योंकि अपने प्रियके हैं। ग्वाल-वालोंने अपने मनमें सोचा कि अवतक ये रसा (पृथिवी) के रसमय अंशका आस्वा-दन करते थे, तव तो हम लोगोंको साथ रखते थे, अब इस साधारण अंश—धूलिके सेवनमें हमारा प्रतारण क्यों किया ? इसलिए चलकर मातासे कहना चाहिए। वलरामने कहा—'आये हो पृथिवीका भार हरने। ठीक है, ब्रह्माने कहा था—भू-पराग हरण करो, परन्तु कन्हैया भैया तुमने सन्धि-विच्छेद ठीक नहीं किया। भू (पृथिवी)का पराग (धूलि) नहीं था, लेकिन भू + उपराग (संकट) था। कहीं धूल खानेसे भार दूर होगा ?'

श्री हरिसूरिकी उत्प्रेक्षाओंके कुछ और नमूने लीजिये। कृष्ण हैं विधाताके पिता। पुत्रने कहा—पिता जी ! मेरा मनोरथ पूर्ण करो। श्रीकृष्णने पृथिवीका कुछ अंश लेकर अपने दाँतरूप द्विजोंको दान किया। ब्राह्मणोंको दान करनेसे इष्ट-पूर्ति होती है। यहाँ 'द्विज' शब्दका अर्थ है—'दो वार जन्म लेनेवाला'। जैसे—पक्षी, दाँत और द्विजाति। दाँत और द्विजाति भगवान्के मुख्य हैं।

स्निग्ध, घृत, दधि, नवनीतादि पदार्थोंका भक्षण करके अशेष स्निग्धताका मार्जन करनेके लिए

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हाथोंमें मिट्टी लगानेकी प्रथा शिष्ट-सम्मत हैं। सम्भव हैं विश्वमुख प्रभुने यही सोचकर मृद्भक्षण किया हो।

श्रीकृष्णने पूतनाके स्तनमें प्रबल विषका पान किया था। अब उसकी शान्तिके लिए थोड़ी-सी अल्पहानि-करी धूलिका सेवन कर लिया। क्यों न हो—विष ही विषका महौषध हैं।

श्री हरिसूरिने क्या ही मनोहर भाव प्रकट किया हैं—

यत् स्पृह्यं त्रिदशैरलभ्यमसतां ध्येयं च यद्योगिनां
प्राप्तं स्यात्किमु तद्रजो व्रजगतं गोगोपिकापादगम्।
इत्थं भूरि निजोदरस्थजनसद्वाञ्छां चिरं चिन्तयन्
मन्ये पूर्णदयार्णवः किमकरोत्तद्भक्षणं तत्कृते॥

प्रभु पूर्ण दयार्णव हैं। उनके उदरमें अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड और उनमें अगणित भक्त-वृन्दका निवास है। भक्तोंके मनमें इच्छा रहती है कि हमें व्रजकी गायों और गोपियोंके चरणोंकी धूलि मिल जाय; क्योंकि वह देवताओंकी भी वाञ्छनीय है, दुष्टोंके लिए दुर्लभ हैं और योगियोंके लिए ध्येय है। उनकी इस चिर-कालीन वाञ्छाको ध्यानमें रखकर ही प्रभुने मृद्भक्षण किया।

श्रीकृष्णने अपने मनमें विचार किया कि आगेकी लीलामें मुझे अनेक रजोगुणी कार्य करने हैं, इसलिए व्रज-रजका भक्षण करके रजोगुणका संग्रह कर लेना चाहिए।

पृथिवीका एक मनोहर नाम हैं—'रसा'। श्रीकृष्णने अपने मनमें सोचा कि मैंने 'रसा'का रसास्वादन नहीं किया तो क्या किया! इसी भावसे मृद्भक्षण किया।

क्या ही सुन्दर भाव है कि श्रीकृष्णने अपने हृदयमें विचार किया कि मेरे सखा ग्वाल-बाल मेरे साथ निर्मर्याद व्यवहार करते हैं। खेल-खेलमें मेरा अपमान भी कर देते हैं। ऐसी स्थितिमें क्षमा धारण किये बिना मेरी लीला नहीं बन सकती। इसी भावसे उन्होंने मृद्भक्षणके व्याजसे क्षमाको धारण किया। क्षमा शब्दका अर्थ है—अपकारका बदला लेनेका सामर्थ्य रखनेपर भी सह लेना और पृथिवी। संस्कृतमें इसका रस लीजिये—

विश्रृङ्खल-विहारिणो मदवमानचेष्टाजुषो,
भवन्ति शिशवोऽखिला अपि तदत्र मत्क्रीडनम्।
क्षमांशविधृतिं विना नहि भवेत्स्वभक्तेष्विति,
प्रभुः किमु चकार तत्कृतितया क्षमाधारणम्॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अपने मुखमें विश्वसृष्टि दिखानी है। रजोगुणके बिना सृष्टि हो नहीं सकती। इसलिए रजस्‌का संग्रह किया।

रज और रज।

मैं अपने भक्तोंका केवल आदर ही नहीं करता, उनके चरणोंकी धूल भी अपने मुखमें धारण करता हूँ और मुख्य बनाता हूँ। 'मुख्य' शब्द का दोनों अर्थ है।

एक विलक्षण भावकी अनूठी छटा देखिये—

यन्निष्कामतया तपो महदिमे कुर्वन्ति तेनारयः
कंसाद्या भृशमुन्मदाः समभवन्नेवं विचिन्त्याऽच्युतः।
संकल्पे रिपुघातसुष्ठुफलके योक्तुं तदा तान् द्विजान्
मृत्स्नाभक्षणकैतवादिह रजोयुक्तानकार्षीत् किमु॥

भगवान्‌ने विचार किया कि आज द्विजगण निवृत्तिपरायण होकर निष्काम भावसे महान् तपमें संलग्न हैं। यही कारण है कि कंस आदि दैत्यगण अत्यन्त उन्मत्त हो गये हैं। अब इन द्विजोंके मनमें भी दैत्योंके संहारका संकल्प उदय होना चाहिए, तभी सफलता मिलेगी—यही सोचकर मृद्भक्षणके व्याजसे भगवान्‌ने द्विजोंको रजोयुक्त कर दिया क्या? मुख ब्राह्मण है और 'द्विज' शब्दका अर्थ दाँत और ब्राह्मण दोनों है।

जिसका कल्याण चाहते हों, उससे ब्राह्मणोंको कुछ दान करवाना चाहिए। उचित ही है कि पृथिवीका कुछ अंश भगवान्‌ने अपने ब्राह्मण—मुखको दान किया। परशुरामावतारमें भी तो ब्राह्मणोंको पृथिवी-दान किया था।

भगवान्‌से भक्त जितना प्रेम करते हैं उतना ही भक्तोंसे भगवान्। दोनोंको दोनोंकी चरणधूलि प्यारी है।

समदर्शी महापुरुषकी दृष्टिमें उत्तम एवं अधम वस्तुओंमें कोई भेद नहीं है। मानो यही व्यक्त करनेके लिए श्रीकृष्णने मक्खनके समान ही मिट्टीको स्वीकार किया—

समदृष्टेर्विशेषोऽस्ति नोत्तमाधमवस्तुनि।
व्यञ्जयन्निति स श्रीशो गण्यवन्मृदमाददे॥

● यशोदाने हाथ ही क्यों पकड़ा?

मैयाने जान लिया कि अन्ततः मृद्भक्षण हाथसे ही तो किया होगा चोरका सहायक भी चोर। इसलिए हितभावनासे प्रेरित नेत्रोंसे देखकर यशोदाने हाथ पकड़ लिया।

● नेत्र भयभीत क्यों?

भगवान्‌के नेत्रोंमें सूर्य और चन्द्रमाका निवास है उन्होंने श्रीकृष्णको

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मृद्भक्षण करते देखा था। वे यह सोचकर व्याकुल हो गये कि ये तो मृत्तिका खाकर भी न जाने क्या कह देंगे, हमलोगोंकी क्या गति होगी ?

• अस्वीकार क्यों किया ?

नाहं भक्षितवान्० इस श्लोककी व्याख्यामें कोई-कोई 'नाहम्' शब्दकी व्युत्पत्ति बन्धनार्थक 'नह्' धातुसे बतलाते हैं। उसका अर्थ है—बन्धन, प्रपञ्च। श्रीकृष्ण कहते हैं कि मैं समूचे प्रपञ्चको ही खा गया तो मिट्टीकी क्या चर्चा ?

'सर्वे मिथ्याभिशंसिनः०' इसका पदच्छेद भी दो प्रकारसे किया जाता है–मिथ्या और अमिथ्या। श्रुतिने परमात्माको 'अनश्नन्' और 'न तदश्नाति' अर्थात् अभोक्ता कहा है। इसलिए भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि मैया ! मुझे मिट्टीका भोक्ता कहनेवाले मिथ्याभाषी हैं। अथवा श्रीकृष्ण मैयाके अनन्त वात्सल्यके सम्मुख अपने ऐश्वर्यको भूल जाते हैं और भयवश कहते हैं कि ग्वालवालोंने मुझे मिथ्या कलंक लगाया है। 'अमिथ्या' पदच्छेदके पक्षमें यह अर्थ है कि मृत्तिका पहलेसे ही मेरे मुखमें है, इसलिए इनका कहना अमिथ्या अर्थात् यथार्थ ही है। इसका यह भी अभिप्राय है कि बलरामजीके वात्सल्य-मिश्रित सख्यसे भयभीत होकर उनके कथनको यथार्थ रूपसे स्वीकार कर लेते हैं। इसमें क्या आश्चर्य है कि जब सच्चिदानन्दघन ब्रह्म शिशुके रूपमें प्रकट हुआ तो शिशु सुलभ स्वभावसे मिट्टी खा ले और उसके बारेमें बड़े-बूढ़ोंके सम्मुख 'नाहीं' कर दे।

'सत्यगिरः' पदका भी तीन प्रकारसे अर्थ किया जाता है। १—'माता ! यदि तुम ग्वालबालोंको ही सत्यवादी मानती हो तो प्रत्यक्षमें मेरा मुख देख लो।' इसका अभिप्राय यह है कि सभी लौकिक विषयोंमें शब्दकी अपेक्षा प्रत्यक्षको प्रबल प्रमाण माना जाता है। केवल अतीन्द्रिय विषयोंमें ही शब्दकी प्रबलता है। अभिप्राय यह कि तुम अपनी आँखोंसे मेरे मुखकी जाँच कर लो, लोगोंकी बातोंमें क्यों आती हो। २—**'सत्यगिरः'** 'मे'का विशेषण है, अर्थात् मैं सत्यवादी हूँ और प्रमाणके रूपमें मेरा मुख देख लो। श्रुतिका कहना है कि यदि दो विवादी एक साथ आवें और एक कहे कि मैंने सुना है; दूसरा कहे कि मैंने देखा है तो सुनी-सुनायी बातकी अपेक्षा देखी बातका मूल्य अधिक होता है। मेरे खाने न खानेके सम्बन्धमें दूसरोंकी सुनी-सुनायी बातकी अपेक्षा मेरे अनुभवकी बात अधिक प्रामाणिक है। तुम मेरा मुँह देख लो। हाथ कंगनको आरसी क्या ? मैं तुम्हें ही प्रत्यक्ष अनुभव कराये देता हूँ। ३—**'सत्यगिरः'** अर्थात् हे सति ! यदि **'अगिरः'** गीर्षु असामञ्जस्यं

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तर्हि मे समक्षं मुखं पश्य । अर्थात् मैया ! यदि मेरे वचनमें असंगति है, मैं एक ही बातको कभी मिथ्या और अमिथ्या, वस्तुतः अनिर्वचनीय बतलाता हूँ तो तू प्रत्यक्ष ही मेरा मुख देख ले; अर्थात् स्वयं अपरोक्ष अनुभव कर ले। प्रपञ्चके समान ही व्यवहार दृष्टिसे मेरा भोक्तापन अमिथ्या अर्थात् यथार्थ है और तात्त्विक दृष्टिसे मिथ्या है। यह बात तेरे स्वयंके अनुभवके बिना स्पष्ट नहीं होगी, इसलिए मेरा मुख देख ले।

बालकृष्णके मनमें एक यह भी बालोचित चातुर्य है कि पहली बार मेरे मुखमें विश्व देखकर माताने नेत्र बन्द कर लिये थे, अब मुख-दर्शनकी बातसे, पूर्व-घटनाका स्मरण हो आनेसे माता मुख नहीं देखेगी। परन्तु स्नेहाधिक्यके कारण यशोदाको वह प्रसंग विस्मृत हो गया था इसलिए उसने आज्ञा दे दी कि अच्छा, मुख खोलकर दिखाओ।

● मुखमें विश्वदर्शन क्यों ?

पूर्व प्रसंगमें यह लीला आ चुकी है कि जब यशोदा मातासे श्रीकृष्णको दूध पिलाते-पिलाते उनके मुखमें विश्वका दर्शन कर लिया, तब उनके नेत्र बन्द हो गये। ऐश्वर्यके सम्मुख वात्सल्य संकुचित तो हुआ, परन्तु फिर दिन-दूना रात-चौगुना वृद्धिगत होने लगा। श्रीकृष्णने अपने मनमें विचार किया कि अखिल विश्व-विलासके दर्शनसे मैयाकी पुण्यराशि नटीके समान नृत्य करने लगी है। इस उल्लास और विलासके प्रसंगमें मुझे भी उसके सम्मुख मुख-विकास करना चाहिए। इसीसे मानो कृष्णने माँके सम्मुख अपना मुख खोल दिया हो। क्या ही सुन्दर द्रुतविलम्बित है :

सकल - विश्वविलासविलोकनोल्लसितपुण्यमयीयमिहाधुना ।
अजनि तत्पुरतस्तु ममोचितो मुखविकास इति व्यकरोत्तथा ॥

और देखिए—यद्यपि श्रीहरिने अपने मुखरूपी अम्बुजात (जलराशि अथवा कमल)में रजःप्रक्षेप किया था तथापि वहाँ पंककी उत्पत्ति नहीं हुई। इससे यह प्रकट किया—ब्राह्मण-मुख निसर्ग-शुद्ध है और उनमें पाप प्रक्षालनकी शक्ति है और भी, हे जननी ! मुख अविनाशी अभोक्तामें मृद्भक्षण मिथ्या ही आरोपित है। देख लिया न तुमने; ठीक इसी प्रकार गोपियोंने भी झूठ-मूठ ही मुझपर माखनचोरीका कलंक लगाया था।

अनशनेऽपि मयीह यथा वृथा जननि रोपितमस्ति मृदोऽशनम् ।
गणय तादृशमेव पुराऽवलेरितमिति प्रथयन्नमृदाननः ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भगवान् श्रीकृष्णने विचार किया कि पहले-पहल वेदोंने ही लौकिक व्यवहारमें मेरा भिन्न-भिन्न विषयोंके रूपमें निरूपण किया है, अब फिरसे गोकुल-वृत्ति गोपियोंने भी मुझपर प्रौढ़ीवादसे उपालम्भ योग्य कलंकका आरोप कर दिया है। यह सब होने-पर भी माता यशोदाकी बुद्धि किञ्चित् भी संक्षुब्ध नहीं हुई और न उसका भाव ही शिथिल हुआ। इसलिए अब उसे सम्पूर्ण जगदाधारके रूपमें अपना दर्शन देना उचित है। इसी भावसे श्रीकृष्णने मुखमें विश्वका दर्शन कराया। आरोपित भेदका अपवाद हो गया। श्रीकृष्ण ज्योंके त्यों। श्रीहरिसूरिकी निरूपण-चातुरी देखिये—

आम्नायैर्भुवि भिन्नभिन्नविषयं संप्रापितोऽपि प्रभु-
भूयो गोकुलवृत्तिभिः पुनरसौ सोल्लुण्ठमाभाषितः।
यद्बुद्धिर्न मनागभूत्तदपि संक्षुब्धा न वा प्रस्खलद्-
भावाऽशेषजगत्स्वरूपकलनं तस्यास्तु तत्साम्प्रतम्॥

यशोदा मैयाने डाँटा—तुम्हारे दाऊदादा और ग्वालबाल कहते हैं कि तुमने मिट्टी खायी है, इसपर भी तुम बार-बार कहते जा रहे हो कि मैंने नहीं खायी है। मैं तुम दोनोंमें किसपर विश्वास करूँ? माँकी यह वाणी सुनकर श्रीकृष्णने उसके संशयका निवारण करनेके लिए अपने मुखमें स्पष्ट रूपसे विश्वास्यताका दर्शन कराया। विश्वासपात्रको विश्वास्य कहते हैं। जिसके आस्य अर्थात् मुख हो उसको भी विश्वास्य कहते हैं।

भुक्तामृद्भवतेति गोपशिशवो जल्पन्ति रामादयो
नेति त्वं भणसीति तत्र कतमो विश्रम्भणीयो मया।
इत्थं मातृगिरं निशम्य भगवांस्तत्संशयोच्छित्तये
स्वास्ये स्पष्टमदर्शयत् किमु तदा मुख्यां सविश्वास्यताम्॥

मैया! ये ग्वालबाल मेरा ही नाम लेकर कह रहे हैं कि 'मैंने मिट्टी खायी—मिट्टी खायी, परन्तु यह सोलहों आने झूठ है। मैंने मिट्टी खायी है तो सबने मिट्टी खायी है। देख ले, सब मेरे मुँहमें बैठे हैं कि नहीं।' क्या कृष्णने इसी भावसे अपने मुखमें विश्व दिखाया?

मामेव तूद्दिश्य वदन्ति सर्वे मातस्तदत्यन्तमृषैव यस्मात्।
भुक्ता मया चेदखिलैरपीति सम्बोधयन् विश्वमदर्शयत्किम्॥

जब श्रीकृष्ण बालकोंके साथ बालक जैसे होकर क्रीडा कर रहे थे तब मिट्टी खाकर उन्होंने बाल-चरित प्रकट किया। परन्तु जब बालकोंने यशोदा मातासे उनसे अपनेसे अलग होनेका वर्णन कर दिया, तब वे स्वतन्त्र भावसे आत्मचरित्र अर्थात् विश्वरूपका प्राकट्य दिखाने लगे।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तत्सावर्ण्यमवाप्य गोपशिशुभिः सक्रीड आसीद्यदा
तन्मृत्स्नाशनतश्च बालचरितं व्यक्तीचकाराऽच्युतः ।
शंसद्भिः प्रसुवे यदा शिशुजनैः स्वातन्त्र्यमाप्रापितो
विश्वात्मा स तदाऽऽत्ममात्रचरितं चक्रे स्फुटं साधु तत् ॥

• मुखमें ही क्यों ?

भिन्न-भिन्न भक्तोंने मेरे भिन्न-भिन्न नाम-रूपोंका भिन्न-भिन्न भाँतिसे अनुध्यान किया है। परन्तु उनमें जो सबकी अपेक्षा प्रमुख अथवा मुख्य है, वही जननीको दिखाना चाहिए। इसीसे कृष्णने कौतुकवश माताको मुखमें ही विश्वका दर्शन कराया। अन्यथा अर्जुनके समान माताको भी अपने शरीरमें ही विराट् रूपका दर्शन क्यों नहीं कराया ?

तत्तद्भक्त विभावितानि बहुशो रूपाणि सन्त्येव मे
यत्तत्र प्रमुखं तदद्य जननीं संदर्शयाम्यञ्जसा ।
मन्येऽसौ मुख एव विश्वविभवं प्रादर्शयत्कौतुकान्
नो चेदर्जुनवद् व्यदर्शि न कुतः स्वाङ्गे विराडात्मता ॥

श्रीकृष्ण ब्राह्मण-भक्त हैं। वेद-वेदी ब्राह्मणके शरीरमें सब देवता, सारे तीर्थ और तो क्या, सम्पूर्ण विश्व निवास करता है। इस वेद-सिद्ध ब्राह्मण-महिमाको विशद करनेके लिए ही मानो, उन्होंने अपने ब्राह्मण-मुखमें निखिल विश्वका दर्शन कराया।

यावत्यो देवतास्ता विदधति वसतिं ब्राह्मणे वेदवेदि-
न्यारात्तीर्थानि कृत्स्नान्यपि किमु बहुना सर्वमेवापि विश्वम् ।
इत्थं वेदोपपाद्यं विशदयितुमिह ब्राह्मणानां महत्त्वं
स्वास्ये कृष्णेन विश्वं निखिलमपि तदा ब्राह्मणात्मन्यदर्शि ॥

माताने पूर्व जन्ममें धरा (द्रोण-वसुकी पत्नी) के रूपमें प्रार्थना की थी कि मुझे तुम्हारे अनुरूप पुत्र-जन्मका सुख मिले। श्रीकृष्णने अपने मुखमें धरा (पृथिवी) का अंश धारण करके यही स्मरण कराया कि तुम्हारी उसी प्रार्थनाको पूर्ण करनेके लिए मैं उसी मुख्य रूपमें आया हूँ। सम्भव है भगवान्का यही आशय हो।

संस्कृत भाषामें पृथिवीका एक नाम गौ भी है। प्रभुने पृथिवीके अंश धूलिकी प्रधानतासे मुखमें विश्वका दर्शन कराकर मानो यह सूचित किया कि गौ को आगे करके ही मुझे विश्वकी रक्षा करनी है।

इस संसारके गुरु (विशाल) काननमें जो वस्तु कहीं देखी-सुनी नहीं गयी, वही श्रीकृष्ण-कृपासे यशोदा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

माताको वालकानन अर्थात् वालकके मुखमें अथवा छोटेसे वनमें दीख गयी, क्या आश्चर्य है ? प्रभुने अपने मुखमें विश्वका दर्शन दिखाकर यह प्रकट किया कि सृष्टिके पूर्व और पश्चात् मेरा जो निर्विकार रूप है वेदोक्त, वही नाम-रूपकी कल्पना होने पर भी ज्योंका त्यों ही निर्विकार रहता है, उसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। इसीसे नामकरणके पूर्व अपने मुखमें विश्वका दर्शन कराया और मिटाया। जिससे नामकरण होने पर कोई विकारी न समझ ले।

● दो बार विश्वदर्शन क्यों ?

गुरुदेवका यह स्वभाव है कि जबतक शिष्यकी बुद्धिमें दृढ़तत्त्व निष्ठाका उदय न हो जाय, तबतक बार-बार उपदेश करता रहे। इसमें एक या अनेक बारका नियम नहीं है। निश्चय ही श्रीकृष्ण अनुग्रह-सम्प्रदायके सद्गुरु और करुणा-पयोनिधि हैं। इसीलिए उन्होंने यशोदाके दृढ़बोधकी उत्पत्तिके लिए बार-बार अपने मुखमें विश्व-दर्शन कराया।

यावत्तत्त्वमतिः सती समुदयत्यन्ते वसन्तं गुरु-
स्तं तावत्समुपादिशेन्न नियमस्तत्रासकृद्वा सकृत्।
मन्येऽनुग्रहसम्प्रदायगुरुणा कारुण्यदुग्धाब्धिना
सञ्चिन्त्यैवमदर्शि विश्वमसकृत् तत्तत्त्वधीकारणात्॥

● यशोदाका मोह कैसे दूर हुआ ?

दर्पणका स्वभाव है—सब कुछ दिखा देना, परन्तु वह अपने स्वरूपको नहीं दिखा सकता, न देख सकता। यहाँ तो श्रीकृष्णके मुख-दर्पणमें स्वयं श्रीकृष्ण और उनका मुख भी दीख रहा है। यह आश्चर्य देखकर यशोदा माता अपने आप ही समझ गयीं कि यह तो प्रकाशान्तर-निरपेक्ष स्वयं प्रकाश आत्मदेव ही हैं। इसलिए उनका मोह निवृत्त हो गया।

सर्वदर्शनचणोऽपि दर्पणः स्वस्वरूप-कलने ह्यनीश्वरः।
अत्र तद्युतमवेक्ष्य तन्मुखं युक्तमात्ममतिराशु साऽभवत्॥

● वैष्णवी मायाका विस्तार क्यों ?

श्रीकृष्णने अपने मनमें विचार किया कि थोड़ी-सी तो मैंने मिट्टी खायी, इससे माताकी बुद्धि व्याकुल हो गयी। अब देख लिया इसने सम्पूर्ण विश्व मुखमें; तो अवश्य ही मूर्च्छित हो जायगी। इसलिए माताको सावधान रखनेके लिए श्रीकृष्णने अपनी मायाका विस्तार कर दिया।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अत्यल्पभूमिशकलादनमाविशङ्क्य सम्भ्रान्तधीरियमभूत्पुनरद्य विश्वम् ।
साक्षाद्वेक्ष्य भविताऽनवधानशालिन्येतद्धिया विभुरसावतनोत्स्वमायाम् ॥

यह ध्यान रखने योग्य है कि यह माया विमुखजन-मोहिनी नहीं है, स्वजन-मोहिनी है। इसलिए इसका विशेषण दिया है—'पुत्रस्नेहमयी'। यह भगवान्के सामीप्य और प्रेमको बढ़ाती है। विमुखजन-मोहिनी माया भगवान्से दूर और विमुख करती है, उसका प्रयोग दैत्योंपर होता है। स्वमोहिनी स्वयं श्रीजी हैं जिसे देखकर स्वयं श्रीकृष्ण भी मोहित हो जाते हैं।

भगवान्ने विचार किया कि किसी विशेष प्रयोजनकी पूर्तिके लिए मैंने माताको मुखमें विश्वरूप दिखाया। यदि इस रूपकी स्फूर्ति सर्वदा बनी रहेगी तो न इसके हृदयमें वात्सल्य-स्नेह रहेगा और न मुझे माताका लाड़-प्यार ही मिल सकेगा। यही सोचकर अप्रतिहत लीलाशाली भगवान् श्रीकृष्णने यशोदाके मनमें प्रेममयी महावैष्णवी मायाका सञ्चार कर दिया।

किञ्चित्कार्यवशाददर्शि वदने यद्विश्वरूपं मया
तत्स्फूर्तिः समवस्थिता यदि सदैवास्यां ततश्चिन्तितः ।
अर्थो नैव भवे मनागपिमे मत्यालोच्य मन्येऽच्युतः
चित्तेऽसावतनोदकुण्ठचरितो मायां महावैष्णवीम् ॥

• यशोदा धन्य क्यों?

लोकपितामह ब्रह्मा जिनके पुत्र हैं और जगदम्बा, जगद्धात्री, महामाया जिनकी पत्नी हैं, उन्हीं परमेश्वरको अपना पुत्र माननेवाली यशोदाकी धन्यता स्वतः सिद्ध है।

पितामहोऽपि यत्पुत्रो जगद्धात्र्यपि यत्प्रिया ।
तमीशमात्मजं मन्यमानाया धन्यताऽऽर्थिकी ॥

जिसके नामसे ही निरतिशय अमृतका रसास्वादन प्राप्त होता है, जो स्वयं अमृतस्वरूप हैं, बड़े-बड़े ऋषि-मुनि ध्यान-दानादिके द्वारा जिनकी सेवा करते हैं अमृत-तत्त्वकी प्राप्तिके लिए, वही प्रभु अपने मुख्य-रूपका मूल्य चुकाकर जिसके स्तनका दूध पीते हैं, उस यशोदा माताके सुकृतकी सीमा अनुपम है, इसमें क्या सन्देह।

नाम्नैवामृतमुत्तमं दिशति यो यश्चामृतात्मा स्वयं
सेवन्तेऽप्यमृतार्थमेव मुनयो यं ध्यानदानादिभिः ।
स श्रीशो निजमुख्यरूपममलं तन्मूल्यमाकल्पयन्
यत्स्तन्यं पिबतिस्म भुव्यनुपमा तत्पुण्यसीमा स्फुटम् ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एक संस्मरण

श्री सीतारामशरणदास जी महाराज

श्रीअवध-धाममें कुछ दिनों पूर्व एक सन्त विराजते थे। उनकी कुटिया आश्रमके ऊपरी भागमें थी। उसीमें वे स्वाध्याय, भजन और ध्यान करते। संयोगवश एक दिन कुटियाके भीतर आग लग गयी। वे खड़ाऊँ पहनकर धीरे-धीरे नीचे उतरे और संकेतसे सेवकको बुलाकर उसके कानमें कहा कि ऊपर कुटियामें आग लग गयी है, तुम जाकर देख लो। सेवकने भयोद्विग्न होकर कहा—'महाराज! आपने ऊपरसे मुझे पुकारकर क्यों नहीं कह दिया? पुस्तक, माला, कुटिया—सब जलकर भस्म हो जायगी।' सन्तने धीरेसे कहा—

'अभी तो माला, पुस्तक और कुटिया ही जलेगी। यदि मैं जोरसे चिल्ला पड़ता तो मेरा स्वरूप ही जल जाता।'

इसका अभिप्राय यह है कि चिल्लाकर बोलना और घबरा जाना साधु-जीवनके अनुरूप नहीं है।

● अहो भाग्यम्! अहो भाग्यम्!!

यं चिन्वन्ति चिरन्तना मुनिवरा बुद्ध्यैकबोध्याध्वनि
यज्ज्ञातोऽपि न वेद वेदनिवहोऽप्यद्यापि तत्त्वार्थतः।
स श्रीमान् जगदादिहेतुरपि सानन्दोऽपि पुत्रात्मना
स्वैरं क्रीडति यत्र तद् व्रजजुषां भाग्यं किमाचक्ष्महे॥

चिरन्तन मनीषी मुनिजन चिरकाल तक सूक्ष्मबुद्धि द्वारा बोधगम्य मार्गमें जिनका अनुसन्धान करते रहते हैं; जिनके द्वारा प्रकाशित वेदसमूह आजतक तात्त्विक रूपमें अपने प्रकाशकको नहीं ढूँढ़ सका, वही जगदादिकारण परमानन्दस्वरूप श्रीमान् प्रभु पुत्र होकर जहाँ स्वच्छन्द क्रीडा करते हैं, उस व्रजमें रहनेवाले प्राणियोंके सौभाग्यका हम क्या वर्णन करें!

●●●

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

[गतांकसे आगे]

शांकर भाष्य • •

१२. वेदान्त-प्रमाण अविद्या-निरसनद्वारा आत्मैकत्वका प्रतिपादन करता है। आत्मामें कोई विशेषता उत्पन्न नहीं करता। आत्मा परमार्थतः अद्वितीय होनेके कारण किसी प्रमाणका विषय नहीं है। वह स्वरूपतः नित्य अपरोक्ष है, स्वयंप्रकाश है। उसे अपनी सिद्धिके लिए किसी दूसरे साधनकी अपेक्षा नहीं। जब आविद्यक द्वैत भासता रहता है, तब भी वह साक्षी स्वयंज्योतिके रूपमें सबको प्रकाशित करता रहता है। (श्वेताश्वतर ६.११)में आत्माको साक्षी, चेता, केवल और निर्गुण कहा गया है। प्रत्यक्षादि प्रमाण इस नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त आत्माको अविद्यासे प्रमाता-सा बनाकर ही जीवित रहते हैं और भासते हैं। वृहदारण्यक (३.४.२)का कहना है कि दृष्टिके द्रष्टाको मत देखो, श्रुतिके श्रोताको मत सुनो, मतिके मन्ताको उसका कर्म मत बनाओ, विज्ञानके विज्ञाताको ज्ञानका विषय मत बनाओ। यही बात (३.७.२३) में भी कही गयो है कि वह अदृष्ट द्रष्टा है। केनोपनिषद् (१.६)का वचन है कि वह मनका विषय नहीं, मनका प्रकाशक है। मुण्डक (२.२.११)का वचन है कि उसीके प्रकाशसे सब प्रकाशित होता है। देह आदिको आत्मा माननेकी भ्रान्ति-दशामें भी वह सर्वान्तरतम साक्षात् अपरोक्ष और अपने सर्वातिशायी स्वरूपसे ही रहता है। देखिये वृहदारण्यक (३.४.१) 'यत्साक्षादपरोक्षाद् ब्रह्म य आत्मा सर्वान्तरः' इत्यादि।

यद्यदि व्यवहारमें ऐसा कहा जाता है कि वेदान्त ब्रह्म और आत्माके अभिन्न स्वरूपका बोध करानेमें प्रमाण हैं, परन्तु इसका केवल इतना ही अर्थ है कि वे अध्यारोपित अहं प्रत्यय विषयताका अपनयनमात्र कर देते हैं। साथ ही उसका यह भी अभिप्राय है कि वेदान्तके अतिरिक्त दूसरे किसी प्रत्यक्षादि प्रमाणसे उसका बोध नहीं होता। एक बात और भी ध्यानमें रखने योग्य है, वह यह है कि शास्त्र जबतक कल्पित प्रमातापनेका तिरस्कार करके ब्रह्मस्वरूपका बोध नहीं करा देता, तभीतक प्रत्यक्षादि प्रमाण, विधि-निषेध शास्त्र और अधिक क्या कहें, वेदान्त भी प्रमाणरूप रहते हैं। बोधके अनन्तर केवल ब्रह्मस्वरूप ही अवशेष रहता है, उसमें कोई भी प्रमाण, प्रमेय आदि व्यवहार नहीं है। इसलिए वेदान्त-शास्त्रको अनुभवी पुरुषोंने अन्त्य प्रमाणके नामसे कहा है।

यह परमार्थ रूपादिका अभाव होनेके कारण प्रत्यक्षका विषय नहीं

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

•• एक अध्ययन

है। लिङ्ग आदिका अभाव होनेके कारण अनुमान आदिका भी नहीं। (सूत्रभाष्य २.१.७)।

यदि यह प्रश्न किया जाय कि ब्रह्मके सर्वथा अविषय होनेपर तो उसको शास्त्रयोनि भी नहीं कहा जा सकता, तो इसका उत्तर यह है कि शास्त्र केवल अविद्याकल्पित भेदकी निवृत्तिमें ही तात्पर्य रखते हैं। शास्त्र इदं रूपसे विषय करके ब्रह्मका प्रतिपादन नहीं करना चाहते, प्रत्युत ब्रह्मके प्रत्यगात्मा होनेके कारण अविषय होनेसे केवल अविद्याकल्पित वेद्य, वेदिता और वेदन आदिका भेदापनयन ही करते हैं। (सूत्रभाष्य १.१.४)।

आत्मा किसीके लिए आगन्तुक वेद्य नहीं है, वह स्वयं सिद्ध है। आत्मा अपने प्रमाणकी अपेक्षासे सिद्ध नहीं होता। प्रत्यक्षादि प्रमाण तो अप्रसिद्ध अन्य प्रमेयकी सिद्धिके लिए स्वीकार किये जाते हैं। (सूत्रभाष्य २.३.७)।

कर्मकाण्डमें अथवा तर्कशास्त्रमें केवल अहं प्रत्ययका विषय कर्त्ता ही जाना जाता है। वहाँ किसीने कर्त्ताके साक्षी, सर्वभूतस्थ, सम, एक, कूटस्थ-नित्य, सर्वात्मा पुरुषको नहीं जाना है। (सूत्रभाष्य १.१.४)।

'तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि' (बृहदारण्यक ३.९.२६) यह औपनिषदत्व विशेषण प्रधानतया पुरुषके उपनिषत् प्रतिपाद्य होनेपर ही संगत होता है। (सूत्रभाष्य १.१.४)। और भी—यह अन्तिम प्रमाण आत्मैकत्वका प्रतिपादक है। इसके बाद कोई आकांक्षणीय शेष नहीं रहता। (सूत्रभाष्य २.१.१४)।

अन्त्य प्रमाण आत्माके प्रमातृत्वको निवृत्त कर देता है। प्रमातृत्व निवृत्तिके साथ ही वह स्वयं भी अप्रमाण हो जाता है। ठीक वैसे ही, जैसे जागनेपर स्वप्नकालका प्रमाण। (गीता भाष्य २.६९)।

ब्रह्मविद्या साक्षात् वस्तुधर्मकी निर्मात्री या निवारयित्री नहीं होती। वह केवल अविद्याको निवृत्त करती है। इस प्रसङ्गमें भी ब्रह्मविद्या केवल अविद्याकृत अब्रह्मत्व; असर्वत्वको ही निवृत्त करे, उससे इससे अधिक की अपेक्षा नहीं है। (बृहदारण्यक भाष्य १.४.१०)।

यदि यह शंका की जाय कि

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रत्यक्षादिका अभाव होने पर श्रुतिका अभाव हो जायगा तो इसका उत्तर यह है कि यह अभीष्ट ही है। वृहदारण्यक उपनिषद्में पिता आदिके अभावके साथ ही साथ 'वेदा अवेदाः' भी कहा हुआ है। ब्रह्मज्ञान होनेपर श्रुतिका अभाव भी श्रौत ही है। (सूत्रभाष्य ४.१.३)।

'अहं ब्रह्मास्मि' यह बोध होने तक ही सब विधि और प्रमाण है। जिस अद्वैतात्मामें न कुछ हेय है न उपादेय, उसमें विषय और प्रमाता दोनों न होनेके कारण भला प्रमाण कैसे हो सकते हैं, जैसा कि कहा है—

अन्वेष्टव्यात्मविज्ञानात्
प्राक् प्रमातृत्वमात्मनः।
अन्विष्टः स्यात् प्रमातैव
पाप्मदोषादिवर्जितः ॥
देहात्मप्रत्ययो यद्वत्
प्रमाणत्वेन कल्पितः।
लौकिकं तद्वदेवेदं
प्रमाणं त्वात्मनिश्चयात् ॥

सूत्रभाष्य १.१.४

जिज्ञास्य आत्माके विज्ञानके पूर्व आत्माका प्रमातापना है। अन्वेषण करने पर तो प्रमाता ही पाप्मदोषादि वर्जित ब्रह्म है। जैसे लोक-व्यवहारमें देहात्मप्रत्यय प्रमाणरूपसे कल्पित है, वैसे ही आत्मविज्ञान हो जानेपर यह निश्चित रूपसे प्रमाण है।

१३. अविद्या बन्धका हेतु है और विद्या, अविद्याको मिटाकर मोक्षका हेतु है। यह विभाग भी आविद्यक ही है। अब प्रश्न यह है कि मिथ्या विद्याने मिथ्या अविद्याको निवृत्त करके मोक्ष प्रकाशित किया तो यह आत्मानुभूति मिथ्या है अथवा सत्य? यदि आत्मानुभूति ही मिथ्या है तो मोक्ष भी मिथ्या है, फिर वेदान्त शास्त्रका प्रयोजन क्या रहा? दूसरी बात यह है कि आत्मानुभूति सत्य है तो मिथ्या वेदान्त वाक्यसे सत्य अनुभूतिका जन्म कैसे हुआ? इस प्रश्नका दो विभाग करके समाधान करना चाहिए। वाक्यसे सत्यानुभूति होती है—इसमें यदि अनुभूति शब्दका अर्थ वृत्ति है तो वह भी मिथ्या है। स्वाप्निक तलवारसे स्वाप्निक व्याघ्रके संहारके समान उससे भी अविद्याका नाश हो ही जायगा और वह अवगति भी आविद्यक होनेके कारण नष्ट हो जायगी। आत्मामें न व्याघ्र है, न खड्ग है, न विद्या है, न अविद्या है, न बन्ध है, न मोक्ष है। जागरणमें अपने स्वरूपमें स्थिति है। इसलिए जागरणमें गौण रूपसे मोक्ष शब्दका प्रयोग होता है। इस पक्षमें बन्ध-मोक्ष दोनों मिथ्या हैं। इससे स्वतः सिद्ध परमार्थकी कोई हानि नहीं है। अध्यस्त विकल्प अपने अधिष्ठान परमार्थके बिना क्षण भर भी जीवित नहीं रह सकते। इसलिए अध्यस्तके अपनयनसे ही परमार्थ-ज्ञान हो जायगा। अब दूसरा उत्तर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

देखिये। चाहे प्रमाण प्रत्यक्ष आदि कोई क्यों न हो, जब वह अपने विषयकी अवगतिके लिए व्यापार कर चुकता है, तब अन्तमें जो वृत्ति उदय होती है, उसके भी अन्तमें नित्य सिद्ध आत्मचैतन्य ही होता है। आलोचनाकी इस प्रक्रियासे यह सिद्ध होता है कि प्रमाणका फल नित्य-सिद्ध चैतन्य ही है। यदि इस वस्तु वृत्तका आश्रय ग्रहण करके विचार करें तो स्पष्ट हो जायगा कि वेदान्तवाक्य-प्रमाणजनित वृत्तिके अन्तमें होने वाली आत्मचैतन्यकी अभिव्यक्ति ही प्रमाणका फल है। इस प्रकार प्रमाणका फल चैतन्यमें ही उपचरित है। कुतर्कके लिए कोई अवसर नहीं है।

गौडपाद-कारिका (२.३२) "न निरोधो न चोत्पत्ति'के भाष्यमें आचार्यने स्पष्ट कहा है कि जब द्वैत वितथ है अर्थात् जैसा दीख रहा है, वैसा नहीं है, परमार्थतः अद्वितीय आत्मा ही सत्य है, तब अनायास ही यह निष्कर्ष निकल आता है कि यह सब लौकिक और वैदिक व्यवहार अविद्याके साम्राज्यमें ही हैं। प्रश्न यह है कि स्वरूपमें किसी प्रकारका व्यापार किये बिना शास्त्र द्वैत-विज्ञानको कैसे निवृत्त करता है? इसका समाधान यह है कि जैसे रज्जुमें किसी प्रकारका व्यापार किये बिना ही उसका विज्ञान सर्पभ्रमका निवर्तक है। ठीक है; क्योंकि द्वैत अथवा भेद अविद्यासे ही अध्यस्त हैं। निर्विशेष आत्मामें ही सुखित्व, मुक्तत्व आदि कल्पित हैं। कहीं-कहीं शास्त्रमें आत्माको असुखी भी कहा गया है, वह इसलिए सुखित्वादिरूप विशेष कल्पनाका अपवाद कर दिया जाय। आगम-वेत्ताओंका कहना है कि निवर्तक होनेसे आत्माके सम्बन्धमें कुछ भी कहना ठीक हो सकता, पर होना चाहिए निवर्तक ही, विधायक नहीं।

किसी-किसीका कहना है कि विद्या-अविद्या आत्माके धर्म हैं, परन्तु यह बात प्रत्यक्षके विरुद्ध है; क्योंकि विवेक और अविवेक दोनों ही अन्तः-करणमें रूप आदिके समान उपलब्ध होते हैं। प्रत्यक्षरूप भी द्रष्टाका धर्म नहीं है। अविद्याका निरूपण अपने अनुभवसे होता है—'मैं मूढ़ हूँ', 'मेरे विज्ञानमें स्पष्टता नहीं है'। विद्या-विवेकका भी अनुभव होता है और उसका दूसरोंको उपदेश भी किया जाता है। दूसरे लोग उसे समझते भी हैं। इसलिए विद्या, अविद्या दोनों नामरूपके पक्षमें ही निक्षिप्त हैं। नाम-रूप आत्म-धर्म नहीं हैं। छान्दोग्य उपनिषद् (८.१४.१)में कहा गया है कि नाम-रूपका निर्वाहक और उसका अधिष्ठान ब्रह्म है। जैसे सूर्यमें दिन-रात नहीं, वैसे परमात्मामें नाम-रूप नहीं, अतः परमार्थतः विद्या-अविद्याका अस्तित्व नहीं है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तब क्या असत्य वेदान्तवाक्यसे सत्य ब्रह्मात्मैकत्वकी अनुभूति होती है ? अच्छा, सुनिए इसका समाधान। विष खानेकी शंका हो जानेपर मृत्यु देखी गयी। स्वप्नमें सर्प काटता है और जल-स्नान होता है। यदि कहो कि ये हेतु-फल दोनों ही मिथ्या हैं, इसपर यह कहना है कि हेतु-फल तो मिथ्या हैं, परन्तु उनका ज्ञान सत्य है। जागरणमें स्वप्नके हेतु-फल तो बाधित हो गये, परन्तु उनकी अवगति बाधित नहीं हुई। कोई कहे कि स्वप्न झूठा था तो यह बात हम मान लेंगे; परन्तु कोई कहे कि तुमने देखा ही नहीं था, तो यह नहीं मानेंगे। देखी हुई वस्तुके झूठे होनेपर भी देखना झूठा नहीं होता।

(सूत्र भा० २.१.१४)

पूर्वपक्षीका कहना है कि किसी भी वस्तुकी अवगति प्रमाणोंका फल है—ऐसी अवस्थामें प्रमाणोंसे जन्य भी होना और कूटस्थ नित्य आत्मज्योति भी होना—परस्पर विरुद्ध हैं। इसका समाधान यह है कि गम्भीरतापूर्वक गवेषणा करनेसे ज्ञात होता है कि इसमें कोई असंगति नहीं है। ज्ञान कूटस्थ नित्य होनेपर भी प्रत्यक्षादि प्रत्ययके अन्तमें लक्षित होता है; क्योंकि सारे प्रमाण प्रत्यय ज्ञानके लिए ही होते हैं। प्रत्यक्षादि प्रत्ययकी अनित्यताके कारण अवगति भी अनित्य-सी भासती है। इसलिए उसको प्रमाणोंका फल कहते हैं परन्तु यह फल शब्द गौणी-वृत्तिसे है, उपचारमात्र है, अर्थात् वह अपने स्वयं प्रकाश अधिष्ठानका ही लक्षक है। (उपदेशसाहस्री)।

१४. ज्ञानाभाव, संशय, विपर्यय ये तीनों ही वस्तु तत्त्वके आवरण हैं। विद्यासे भिन्न हैं और विद्याके उदयकालमें ही नष्ट हो जाते हैं। इसलिए कहीं-कहीं इन्हें भी अविद्या कहते हैं; परन्तु वेदान्त-शास्त्रमें विशेषरूपसे मिथ्याज्ञानको ही अविद्या कहते हैं; क्योंकि वही सब अनर्थोंका हेतु है। जबतक अपने आत्माको शरीर, करण आदिसे संयुक्त मानते हैं, तभीतक इसको शरीर, जीव, विज्ञानात्मा, विज्ञाता, द्रष्टा, श्रोता, कर्त्ता, भोक्ता इत्यादि उपाधि सम्बन्ध-द्योतक शब्दोंसे इसका वर्णन करते हैं। जबतक अध्यारोपित प्रमातृत्व अनुवृत्त होता है, तभीतक 'मैं नहीं जानता', 'मुझे संशय है', 'मुझे उलटा ज्ञान हो गया' है; 'अब इस प्रमाणसे यह वस्तु जानी गयी'—इन सब ज्ञान और अज्ञानरूप व्यवहारोंका आश्रय अपनेको मानता है। इस स्वाभाविक अविद्याके कारण ही वह अपनेको अज्ञ, संशयालु और विपर्ययी भी मानता है। अविद्या-निवृत्तिके साथ ही संशय, विपर्यय दोनों निवृत्त हो जाते हैं। जैसे झाड़ू अपनी क्रियाके द्वारा कूड़े, कचरेको हटाती है, वैसे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"જે ન થાય ઈચ્છાથી, તે થાય બચતથી"

ત્રીસ મહિના અગાઉ તેણીએ રૂા. ૫૦૦/-નું
માસિક હપ્તાથી રીકરીંગ ડીપોઝીટ
એકાઉન્ટ સેન્ટ્રલ બેંકે ખોલાવ્યો હતો.
.......અને આજે એ ખાતામાં જમા થયેલા
રૂા. ૧૬૧૫૦/- એ તેણીને નવી ગાડી (કાર)
ખરીદવા શક્તિમાન કરી

સેન્ટ્રલનો આભાર....

...તમારી ઇચ્છા પૂરી કરવા બચત કરો

સેન્ટ્રલ બેન્ક
ઓફ ઈન્ડિયા
રજીસ્ટર્ડ ઓફિસ : મહાત્મા ગાંધી રોડ, મુંબઈ-૧

ભિન્ન ભિન્ન લોકો અને જુદા
પહોંચેલી બેન્ક એટલેજ સેન્ટ્રલ

With best compliments from :

The Mahavir Printing Works,

Sambava Chambers,

SIR PHEROZESHAH MEHTA ROAD

FORT : BOMBAY-1

Phone : 262785

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

WITH
BEST
WISHES

★

From :

Jagjivan-Pragji
&
Co.

5th Lane
MANGALDAS MARKET
BOMBAY-2

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विद्या किसी क्रियाके द्वारा अविद्याको दूर नहीं करती। वह तो ठीक सूर्योदयमात्रसे अन्धकारकी स्वाभाविक निवृत्तिके समान ही अविद्याकी निवृत्ति करती है। वेदान्त-आचार्यके उपदेश-मात्रसे ही विद्याका उदय होता है।

मुण्डकोपनिषद् (२.२.८) 'भिद्यते हृदयग्रन्थिः' इस मन्त्रके भाष्यमें आचार्यने कहा है कि ज्ञाना-भाव, संशय और विपर्यय तीनों ही अज्ञान हैं और वे केवल ज्ञानसे निवृत्त हो जाते हैं। गीताभाष्यके (१३.२) में भी अविद्याके तीनों रूप और विवेकप्रकाशसे उनकी निवृत्तिका वर्णन किया गया है। ईशावास्यके १८वें मन्त्रके भाष्यमें भी ब्रह्मविज्ञानसे अविद्या, संशयादिकी निवृत्ति कही गयी है।

जब तक अविद्याकी निवृत्ति नहीं होती, तभीतक जीव धर्माधर्मका आश्रय है और उसका जीवत्व भी है। (सू० भा० १.४.६)।

जबतक बुद्धिरूप उपाधिका सम्बन्ध है, तभीतक जीवका जीवत्व और संसारित्व है। (सू० भा० २.३.३०)। जैसे शुक्तिका और प्रतीयमान रजतके अग्रहणमें विपरीत ज्ञान ही व्यवधान है, उसी प्रकार आत्माकी अप्राप्ति अविद्यामात्र ही व्यवधान है। (बृहदारण्यक भा० १.४.७)।

विद्योदय काल ही अज्ञान-निवृत्ति काल है। (बृ० भा० १.४.१०)। विद्याका उदय होनेपर सूर्योदयसे अन्धकारके समान अविद्याका नाश हो जाता है (गी० भा० २.६९)। अविद्याकी निवृत्तिमें कोई क्रम नहीं है (सू० भा० ४.१.२)। आत्मामें अविद्याके होने और न होनेका कोई अन्तर नहीं है। रस्सी, ऊसर, सीप और आकाशको कोई साँप, जल, चाँदी या मलिन समझे तो इससे उनका क्या सम्बन्ध है? 'ध्यायतीव लेलायतीव' इस श्रुतिके अनुसार आत्माका अविद्याकृत कर्तृत्व भी मिथ्या ही है। (बृ० भा० ४.४.६)।

१५. शांकर भाष्यका परिशीलन करनेसे ज्ञात होता है कि आत्माके ब्रह्मत्वका ज्ञान आगम और तदनुसारी तर्क—दोनोंसे ही सम्पन्न होता है। स्वयं श्रुतिने भी स्थान-स्थानपर तर्कका सहारा लिया है। बृहदारण्यक उपनिषद्‌का मधुकाण्ड आगमप्रधान है और याज्ञवल्कीय काण्ड तर्कप्रधान है। उपदेशमें एक विशेष क्रमकी स्वीकृति आगम है। इसके विना विचार पथभ्रष्ट हो जाता है।

जो निपुणमति अधिकारी वेदान्त-वाक्य श्रवणमात्रसे अपने सर्व व्यव-हारातीत स्वरूप विज्ञानमें समर्थ है, उसके लिए दूसरे प्रमाण अथवा साधनकी आवश्यकता नहीं है। उसका अध्यारोपापवाद पूर्ण हो गया है। वैसे तो वह अज्ञान-दशामें भी अपने

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्वरूपमें ही था, भ्रान्तिवश अपनेको प्रच्युत-सा मान रहा था। यह अविद्या-निवृत्तिसे उपलक्षित आत्मा ही 'आत्मानुभव' शब्दसे कहा जाता है। विद्या-प्रत्ययके अन्तमें अनुभव-रूप आत्मा ही लक्षित होता है। कर्मकाण्डमें केवल श्रुतिवाक्य ही प्रमाण होता है, परन्तु ज्ञानकाण्डमें अनुभव-पर्यवसायी वाक्य ही प्रमाण होता है।

मन्द-मध्यम मति अधिकारी एक बारके उपदेशसे परमार्थका अनुभव करनेमें असमर्थ होते हैं। उनके लिए श्रुतिके द्वारा अनुगृहीत और अनुकूल तर्क भी स्वीकार करने योग्य हैं। मन्तव्यका यही अभिप्राय है। यह आत्मानुभूति घट-पटादिके समान ऐन्द्रियक अथवा शिरोवेदना आदिके समान मानसिक नहीं है, किन्तु सम्पूर्ण बाह्य एवं आध्यात्मिक द्वैत-प्रपञ्च केवल प्रतीतिमात्र है और आत्मचैतन्यसे अतिरिक्त नहीं है— ऐसी है। स्वप्रकाश्य दृश्यकी अपेक्षासे इसके लिए अनुभूति शब्दका प्रयोग होता है। सूर्य प्रकाशस्वरूप है। प्रकाश्यकी अपेक्षासे उसे प्रकाशक कहते हैं। वेदान्त-विचारमें केवल तर्क अथवा शुष्क तर्क, जो आगम और अनुभवके विरुद्ध है, केवल बुद्धि की घुड़दौड़ है; उसके लिए कोई अवकाश नहीं है।

वेदान्तमें तत् पदार्थ संसार-धर्मसे विनिर्मुक्त, अनुभवात्मक ब्रह्मको ही कहा गया है (सू० भा० ४.१.२)। श्रुतिने ही सहायकके रूपमें तर्कको स्वीकार किया है (सू० भा० १.१.२)। ब्रह्मज्ञान अनुभवपर्यवसायी एवं सिद्ध वस्तुविशेप है इसलिए यह केवल श्रुतिवाक्यपर विश्वासमात्र नहीं है (सू० भा० १.१.२)। जो एक बार 'तत्त्वमसि' महावाक्य श्रवण करके आत्माको ब्रह्मके रूपमें अनुभव कर लेता है, उसके लिए आवृत्ति निरर्थक है, परन्तु जबतक अनुभव न हो, तब तक आवृत्तिका उपयोग है ही (४.१.२)। आत्मा निरंश है परन्तु अध्यारोपितके नाना अंश हैं, जैसे देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, विपय-ज्ञान आदि। एक अवधानसे एक अंशकी निवृत्ति और दूसरे अवधानसे दूसरे अंशकी निवृत्ति, इस प्रकारसे क्रम-क्रमसे आवृत्ति गम्भीर होती जाती है। यह आत्मानुभूतिका पूर्वरूप तो है ही। श्रुति मननका निर्देश करके तर्कका आदर करती है। परन्तु तर्क भी अनुभवका अंग होना चाहिए, शुष्क नहीं (सू० भा० २.२.६)। आगमगम्य वस्तुका विरोध केवल तर्कसे नहीं करना चाहिए; क्योंकि आगमहीन एवं उत्प्रेक्षा-प्रसूत तर्क प्रतिष्ठित नहीं होते। उत्प्रेक्षा निरंकुश है (सू० भा० २.१.११)।

जहाँ प्रतिवादी आगमको स्वीकार न करता हो, वहाँ उसीकी रीतिसे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

केवल तर्क करना दोष नहीं है। जवतक उसके तर्क उसी रीतिसे काटे नहीं जायँगे तवतक बुद्धिमान् पुरुष उनकी असारता नहीं समझ सकता। इसीसे अवैदिकोंके शुष्क तर्क-निराकरणमें कारिकाकार और भाष्यकार दोनों ही उन्हींके तर्कसे उनका खण्डन करते हैं।

१६. अव हम अध्यारोप-अपवादकी प्रक्रियाके अन्तर्गत कार्यकारण-विवेकको लेते हैं। छान्दोग्य उपनिषद्में 'सत्' शब्द-वाच्य अद्वितीय ब्रह्मसे तेज, जल और अन्नादिकी सृष्टि कही गयी है। इसके वाद वही 'सत्' नामकी परादेवता जीवात्मरूपसे सवमें प्रवेश करती है और नाम-रूपको विशिष्ट आकृति देती है—ऐसा उपदेश है। मिट्टी, लोहा, सोना आदि दृष्टान्तोंसे यह वात समझायी गयी कि कारणसे कार्य अन्य नहीं है और कारणका विज्ञान होनेपर ही सम्पूर्ण कार्यका विज्ञान हो जाता है। इसके वाद यह कहा कि वह मूल 'सत्' ही सव कुछ है, वही सत्य है। वही सवकी आत्मा है। श्वेतकेतो! तुम वही हो। (६.८.७)। इस प्रकार सम्पूर्ण जगत् और श्रोता श्वेतकेतु सव कुछ ब्रह्म-स्वरूप ही हैं। यह सिद्धान्त स्थिर किया गया है। मुण्डकोपनिषद्में भी 'अक्षर-सत्य'के नामसे प्रसिद्ध अद्वितीय ब्रह्मसे ही चराचर जगत्की सृष्टि कही गयी है और अन्तमें 'ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्तात्·········ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठं' (२.२.१२) इस मन्त्रके द्वारा ब्रह्मात्मैकत्वका ही निरूपण है। तैत्तिरीय उपनिषद्में भी ब्रह्मसे आकाशादि जगत्की सृष्टि कहकर उपसंहारमें सवका निषेध कर दिया गया है और ब्रह्मको ही आत्मरूपसे जानकर अभय-प्रतिष्ठाकी प्राप्ति कही गयी है (२.७)। यह वात ध्यानमें रखने योग्य है कि ऐसे स्थलोंमें आत्माके अद्वितीयत्वमें बुद्धिका प्रवेश करानेके लिए ही कार्य-कारणवादको स्वीकार किया गया है। कार्यकी सत्यता वतलानेके लिए नहीं। इससे स्पष्ट है कि कार्य वाचारम्भण है, नाममात्र है अर्थात् मिथ्या है। मृत्तिका आदि कारण हैं, सत्य हैं, अर्थात् विवर्ती कारण ही परिणामी नहीं। इसलिए कार्य-कारण भावका निरूपण परमार्थ सत्यके ज्ञापनके लिए है, कार्य-कारण भावकी यथार्थताके लिए नहीं। इसके लिए छान्दोग्य-उपनिषद्के छठे अध्यायका विशेष अनुसन्धान करना चाहिए। उसी उपनिषद्के (८.४)में 'सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः' भाष्यकार कहते हैं कि मृदादि दृष्टान्तोंके द्वारा सृष्टयादि प्रपंचके निरूपणका यह अभिप्राय है कि कार्य कारणसे अभिन्न हैं। सम्प्रदायवेत्ता आचार्य भी ऐसा ही कहते हैं। यह अद्वैत वस्तुमें बुद्धिप्रवेश करानेकी एक प्रक्रिया है। (गौ० का० ३.१५) (सूत्रभाष्य १.४.१४)।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भगवद्गीतामें भी प्रकृति द्वारा ईश्वरको ही जगद्-कारण कहा गया हैं। इसके दो अभिप्राय हैं—एक तो भगवान् जगत्के स्वतः कारण नहीं हैं और दूसरे जगत् कारणसे अनन्य है। साथ ही भगवान्का और कोई कारण नहीं है (६.७)। भगवान् सबमें व्याप्त हैं। भगवान्के आश्रयसे ही जगत् स्थिर है। जगत्की उपस्थितिमें भी भगवान् अद्वितीय हैं। जगत्की स्वतन्त्र सत्ता नहीं है और वस्तुतः भगवान्में जगत् नामकी कोई वस्तु नहीं है। गीताके नवें अध्यायके चौथे, पाँचवें श्लोकमें एक साथ ही 'मत्स्थानि सर्वभूतानि' और 'न च मत्स्थानि भूतानि' दोनों ही कहा गया है। परमात्मामें किसी भी दूसरी वस्तुका मृषा संसर्ग भी नहीं है, यथार्थ संसर्गकी तो कथा ही क्या !

ब्रह्मसूत्रमें 'जन्माद्यस्य यतः' और 'प्रकृतिश्च प्रतिज्ञा दृष्टान्तानुपरोधात्'—ये दोनों सूत्र कार्य-कारणका अभेद बतानेके लिए ही प्रवृत्त हुए हैं। सूत्रने स्वमुखसे ही कहा है—'तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः' (२.१.१४)। आचार्यने इसके भाष्यमें छान्दोग्य एवं बृहदारण्यकके अनेक वाक्य उद्धृत किये हैं, जिनका अभिप्राय है कि परमात्माके सिवाय दूसरी कोई वस्तु नहीं है, सब कुछ परमात्मा ही है। उनका कहना है कि इसके बिना एक-विज्ञानसे सर्वविज्ञान होना शक्य नहीं है, जैसे घट, करक आदिके आकाश महाकाशसे अनन्य हैं, जैसे मृगतृष्णाके जल ऊसर आदिसे अनन्य है, ठीक वैसे ही। क्योंकि वे दृष्ट नष्टस्वरूप हैं और अनिर्वचनीय हैं। यह प्रपञ्च ब्रह्मसे अतिरिक्त नहीं है।

१७. एक प्रश्न यह है कि वेदान्तमें वर्णित सृष्टि क्या सर्वथा अपरमार्थ ही है अथवा उसमें कुछ तथ्य भी है? जिसका इतने विस्तारसे निरूपण किया गया है, उसमें परमार्थ-गन्ध भी नहीं है, यह कैसे सोचा जा सकता है? प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे उपलभ्यमान अर्थ-क्रियामें समर्थ यह दृश्य प्रपंच मिथ्या ही है। बुद्धिमान् पुरुष इस बातका आदर कैसे कर सकता है? पूर्वपक्षीका यह कथन सत्य है।

इसका समाधान यह है कि जब कर्मोंका अनुष्ठान या उपासना करनी हो तो उनके लिए उपयोगी होनेके कारण पदार्थोंका समर्थ क्रियाकारी होना स्पष्ट ही देखनेमें आता है और जबतक नाम-रूपकी उपाधिसे पृथक् करके ब्रह्मका ज्ञान नहीं होता तबतक कार्यकी सत्यता भी मानी ही जाती है; परन्तु यह सत्यत्व केवल व्यावहारिक है, पारमार्थिक नहीं। सृष्टिके अविद्याकृत नाम-रूपका बाध किये बिना सबको मायिक स्वीकार किया जाता है। ब्रह्ममीमांसा करनेपर इस

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सृष्टिका निरूपण ब्रह्मसे अन्य सत्य या मिथ्याके रूपमें नहीं किया जा सकता और तत्त्वदृष्टिसे इसका अभाव भी हो जाता है। तब यही कहना पड़ेगा कि भिन्न-भिन्न शब्दोंके द्वारा भिन्न-भिन्न प्रत्ययोंके विषयके रूपमें ब्रह्म ही व्यवहारमें देखा जाता है। इससे उसकी अद्वितीयतामें कोई बाधा नहीं पड़ती। वह तो नित्य सिद्ध ही है। इस प्रकार मन्दमतिके लिए जगत्की व्यावहारिक सत्ता स्वीकृत है।

गौडपादने (४.४२में) कहा है कि जो लोग अजातिसे डरते हैं उनके लिए ज्ञानी पुरुषोंने उत्पत्तिका वर्णन किया है। वे केवल उपलब्धि और आचारके बलपर ही दृश्य वस्तुको 'अस्ति' कहते हैं। वेदान्तमें प्रवेश होनेपर तो अज, अद्वय आत्माका ज्ञान हो ही जाता है (देखिए भाष्य)। जैसे जादूके हाथीको भी हाथी ही कहते हैं, वैसे ही मायिक दृश्यको 'अस्ति' शब्दसे कहते हैं (४.४४)। वस्तुतः मायाके खेलके समान ही सबका जन्म होता है। वस्तुतः माया ही नहीं है (४.५८)। आचार्यने भाष्यमें कहा है कि माया 'इत्यविद्य-मानस्याख्या' माया—यह अविद्य-मानका नाम है।

वृहदारण्यकभाष्य (२.५.१)में तत्त्वतः नामरूप वस्त्वंतर नहीं है। 'ब्रह्म एकमेवाद्वितीयम्' है। नानात्व मिथ्या है—'नेह नानास्ति किंचन'। अविद्याके कारण जब उपाधिसे इसका पृथक्करण नहीं होता और नाम-रूप-पर ही दृष्टि अटक जाती है, तभी वस्त्वंतरके प्रति अस्तित्व का व्यवहार होता है।

कहनेका अभिप्राय यह है कि पारमार्थिक दृष्टि, व्यावहारिक दृष्टि आदिका भेद भी आविद्यक ही है, वास्तविक नहीं। ● (पुनः)

फल त्यागका फल

●

कथा है लक्ष्मीके स्वयम्वर की। देवता और दानवों की भीड़ जुड़ी थी। लक्ष्मीने अपने हृदयकी बात गुप्त रक्खी थी। स्वयम्वर-सभामें पदार्पण करके उन्होंने कह दिया—'जो मुझे नहीं चाहता, उसीके गलेमें वरमाला डालूँगी।' देवता-दानव तो पहले ही ललासासे आकुल-व्याकुल हो गये थे। कोई निःस्पृह नहीं था। लक्ष्मीने गम्भीरतासे देखा कि बड़ी शान्तिके साथ कोई शेषनागकी शय्यापर सो रहा है। वे स्वयं वहाँ गयीं। लेटे हुए विष्णुके कण्ठमें वरमाला पहना दी। चरणोंके पास बैठकर पाँव दबाने लगीं और अबतक दबा रही हैं। 'न मागे तयाची रमा होय दासी'—यही फल त्यागका फल है।

—विनोबा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बाबा श्री रामदासजी महाराज

(१)

उन दिनों सन्त कबीरकी धवल कीर्ति दिग्दिगन्तमें व्याप्त हो रही थी। युवा अवस्थामें ही इतना बड़ा सन्त, इतनी ऊँची पहुँच, ऐसी-ऐसी सिद्धियाँ। इलाहाबादके पास एक मुसलमान फकीर रहते थे। उनकी उम्र सौ वर्षके लगभग थी। उनके मनमें किञ्चित् ईर्ष्यामिश्रित स्पर्धाका उदय हुआ। 'सौ वर्षमें भी मेरी इतनी ख्याति नहीं।' वे पैदल चलकर काशी पहुँचे। कबीरकी पैनी अन्तर्दृष्टि उनके हृदयको पहचान गयी। उन्होंने अपनी कुटियाके आगे एक सूअर बाँध दिया। मुसलमान फकीर सूअरको देखकर आगबबूला हो गये। सुलगती आँच जल उठी। भीतरका बाहर आ गया। 'यह काफिर है। हरामको बाहर बाँध रक्खा है।' वाच्य-अवाच्य कहने लगे।' सन्त कबीर हँसते हुए कुटियाके बाहर निकले। सहज स्वभावसे बोले—'हमारे तो हराम बाहर बँधा है, तुमने तो फकीर! उसको भीतर बाँध रक्खा है और पालन-पोषण-सम्वर्द्धन भी करते हो।' फकीर चुप हो गया। और कबीरको सच्चा फकीर मानने लगा।

इस्लामी भाषामें सूअर और क्रोध दोनों ही हराम हैं।

(२)

झोलीमें हजारा लिये 'सीताराम, सीताराम'की माला जपते एक वैष्णव भक्त जंगलमें यात्रा कर रहे थे। कुएँ पर गये। झाँककर देखा, पानी बहुत नीचे था। लोटा-डोरकी खोज और प्रतीक्षामें बेचारे बैठ गये। इतनेमें एक हरिनोंका झुण्ड आया। सबके सब प्यासे थे। उन्होंने कुएँकी ओर देखा और आँखें उठाकर ऊपरकी ओर निहारा। यह क्या? कुआँ पानीसे लबालब भर गया। हरिनोंका झुण्ड पानी पीकर छलाँग भरी, नौ-दो ग्यारह। बाबाजी अपने आसनसे उठकर कुएँके पास गये, परन्तु पानी फिर नीचे बैठ चुका था। बाबाजी ने कहा—यह क्या? हरिनोंके लिए भर गया, मेरे लिए बैठ गया। आकाशवाणी हुई—'बाबाजी! वे हरिन मेरी ओर देख रहे थे—ऊपरकी ओर और तुम लोटा-डोरके सहारे नीचेकी ओर। क्यों, ठीक है न! अन्याश्रयका त्याग किये बिना भगवदाश्रयका रस नहीं आता।

(३)

यमुनाजीके तटपर राजपण्डित

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

करहेवालेके मुखारविन्दसे

और नगरकी एक भंगिन दोनों प्रतिदिन मिल जाते थे। दोनों अलग-अलग स्नान करते। चन्दन लगाते। डोलची-में-से निकालकर अपने-अपने ठाकुरजी-की पूजा करते और घर जाते। पण्डितजीको भंगिनका यह पवित्र आचरण सहन नहीं हुआ। एक दिन क्रोधवश उसे बहुत धमकाया—'तू जल गन्दा करती है, घाट अपवित्र करती है। तेरी छाया पड़ जाती है इत्यादि।' भंगिनने कहा—'मैं नीचेकी ओर रहती हूँ। अब बादमें आया करूँगी। आप कहाँ, मैं कहाँ। मुझ पर तो आप कृपादृष्टि ही रक्खा कीजिये। परन्तु पण्डितजीका क्रोध उतरा नहीं, बढ़ गया। गाली देने लगे। भंगिन सुनती रही—सुनती रही। एकाएक पण्डितजीकी ओर दौड़ पड़ी। 'यह मेरा पति है, मैं इसका आलिंगन करूँगी।' लोगोंने रोका—'क्या बकती है?' वह बोली—'मैं चाण्डालिन, क्रोध चाण्डाल। है न सजातीय सम्बन्ध!' पण्डितजी मन ही मन जलते-भुनते घर गये और पत्नीको सब बात सुनायी। ब्राह्मणीने कहा—'तुम चुप रहो, मैं समझ लूँगी।' जब-जब भंगिन उधर कमाने जाय। ब्राह्मणी बरसने लगती थी। भंगिन भी कुछ कह देती—'तुम्हारी और मेरी जात-पाँत एक।' बात बढ़ती ही गयी।

राजपण्डितने राजासे शिकायत की। राजाने सिपाहियोंको आज्ञा दी—'ब्राह्मणी और चाण्डाली जिस दशामें हों उसी दशामें ले आओ।' संयोगकी बात। भगवान्‌की लीला। जिस समय सिपाही पहुँचे भंगिन स्नान करके, चन्दन लगाके अपने ठाकुरजोकी पूजा कर रही थी। पवित्र शरीर, प्रसन्न मुख। सिपा-हियोंने कहा—'ऐसे ही हमारे साथ चलो-चलो।' वह चल पड़ी। सिपाही जिस समय ब्राह्मणीके घर पहुँचे, वह बिना स्नानके गन्दे कपड़े पहने, बच्चेकी टट्टी खपरैलमें लिये घरसे बाहर निकल रही थी। सिपाहियोंकी डाँट-फटकारसे विवश होकर वह भी वैसे ही खपरैलमें मैला लिये राज-दरबारमें पहुँची।

राजाने भंगिनको ब्राह्मणी समझ कर प्रणाम किया। आदरसे बैठनेको कहा। ब्राह्मणीको भंगिन समझकर डाँटा—'क्यों री, भंगिन! तू इस पुजारिन ब्राह्मणी और पवित्र ब्राह्मणको सताती है। तुझे दण्ड दूँगा।' पासा ही पलट गया। पण्डितजीको काटो तो खून नहीं। राजाके कानमें धीरेसे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कहा—'यह भंगिन नहीं, मेरी ब्राह्मणी है।' राजा आश्चर्यचकित। उसने कहा—'देखो पण्डितजी! भगवान्की कैसी लीला है। दोनोंको असली हालतमें लाकर मेरे सामने खड़ा कर दिया। अब भगवदिच्छाके सामने सिर झुकाओ।

(४)

सन्त भजन करनेके लिए बस्तीसे दूर बियावान जंगलकी किसी झाड़ीमें बैठ जाया करते थे। वर्षोंतक यह नियम अटूट चलता रहा। उम्र बुढ़ापेकी ओर ढली। भजन करते-करते एक दिन मनमें संकल्प उठा कि ईश्वर अगर एक घोड़ा दे दे तो प्रतिदिन उसपर आया—जाया करूँ। वहाँसे थोड़ी ही दूरपर राजाका तम्बू लगा था। उसमें एक घोड़ीको बच्चा हुआ। उसे राजधानी तक कन्धेपर ले जानेके लिए आदमी नहीं था। सिपाहियोंने भजन करनेवाले सन्तको पकड़ा और उसपर नवजात घोड़ेके बच्चेको लाद दिया। सन्त अपने कन्धेपर बछड़ेको लादे चलते-जाते थे और कहते जाते थे—हे ईश्वर! मैंने तो अपने चढ़नेके लिए घोड़ा माँगा था; तूने घोड़ेको ही मेरे कन्धेपर क्यों रख दिया। क्या सचमुच तुझे उपर-नीचेका भेद मालूम नहीं है? ●

एक जिज्ञासा

'क्या आप सृष्टिके पूर्व अकेले ही थे?' भक्तने भगवान्से जिज्ञासा की।

भगवान्ने कहा: 'मेरे एकत्वको भूत बनाना उचित नहीं है।'

भक्त: मैंने सुना है कि आप सृष्टिके अन्तमें केवल अकेले ही रह जाते हैं।

भगवान्: इसका अर्थ तो यह हुआ कि इस समय मैं एक नहीं हूँ, सृष्टिका प्रलय होनेपर मेरा एकत्व उत्पन्न होता है।

भक्त: फिर क्या इस समय भी आप एक ही हैं?

भगवान्: हाँ! मेरी एकता तुमसे एक होनेके कारण है। अन्यथा मैं और तुम दो रहेंगे। यह समय और इसमें होनेवाले सृष्टि-स्थिति-प्रलय सब मेरी और तुम्हारी एकताकी झूठी चमक हैं। जब तुम मुझे अपनेसे अलग देखते हो तब ये सच्चे-से होकर तुम्हारे सामने आते हैं।

भक्तने कहा: मैं तुम एक तो कहाँ अनेक? ●

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

क्या मिट्टी और घड़ा-दोनों सत्य हैं ?

'मृत्तिकेत्येव सत्यम्' : एक विवेचन

पि० सुब्रह्मण्य भट्ट—कन्यान (दक्षिण कन्नड)

छान्दोग्य उपनिषत् की **'येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातम्'**[1] इस श्रुतिमें यह प्रतिज्ञा की गयी है कि एकके विज्ञानसे सर्वका विज्ञान हो जाता है। इसीको युक्तियुक्त सिद्ध करनेके लिए यह कहा गया है कि[2] **'यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्।'**

प्रश्न यह है कि यहाँ रज्जु-सर्प आदिका दृष्टान्तके रूपमें उल्लेख न करके 'मृत्पिण्ड' और 'मृन्मय' आदिका दृष्टान्त क्यों दिया गया है? इसका समाधान यह है कि यहाँ मृत्पिण्डका उदाहरण देना ही समुचित है। अन्यथा कारणके विज्ञानसे कार्यके विज्ञानको सिद्ध करना असम्भव हो जाता। प्रकृति विकाराव्यतिरेक-न्यायसे अर्थात् कारणसे कार्य व्यतिरिक्त नहीं होता—इस युक्तियुक्त निर्णयके द्वारा एकके विज्ञानसे सर्वविज्ञानकी सिद्धिके लिए प्रकृति-बुद्धिसे विकार-बुद्धिके बाधका निरूपण करना है। रज्जु-सर्प आदिके दृष्टान्तसे उसका उपपादन शक्य नहीं है, क्योंकि रज्जु-बुद्धिसे सर्प-बुद्धिके समान मृद्-बुद्धिसे घट-बुद्धिका बाध नहीं होता।

कोई-कोई आधुनिक विद्वान् इसका समाधान यों करते हैं कि मृत्तिका जैसे स्वरूपतः कार्यमें अनुगत है तो कार्यको भी प्रत्यक्षतः मृत्तिका-रूप जाना जा सकता है, वैसे रज्जु-विज्ञानसे सर्प-विज्ञानका उपपादन नहीं किया जा सकता; इसलिए मृद्-घटका दृष्टान्त दिया गया है और रज्जु-सर्पादिके दृष्टान्तका अनादर

---

१. जिससे अश्रुत श्रुत, अमत मत और अविज्ञात विज्ञात हो जाता है।

२. वत्स ! जैसे एक मृत्पिण्डके ज्ञानसे सब विज्ञात हो जाता है। घटादि विकार केवल वाणीसे व्यवहार करनेके लिए नाम मात्र हैं। केवल मृत्तिका ही सत्य है विकार नहीं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

किया गया है। यह समाधान ठीक नहीं है; क्योंकि जहाँ तक कार्यमें अनुगतिका प्रश्न है, वहाँ तक मृत्तिका और रज्जुमें कोई विलक्षणता नहीं है। दोनों ही अपने-अपने कार्यमें अनुगत हैं। माण्डूक्य भाष्यमें आचार्यने कहा है—'आत्मा, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों अवस्थाओंमें अनुगत है; क्योंकि सर्पादि कल्पनामें रज्जुके समान वह सर्वत्र अव्यभिचरित चित् सत्ताके रूपमें अनुगत है।' यही बात देखनेमें भी आती है। यदि सर्पादिमें रज्जु-स्वरूपकी अनुगति न हो, तो रज्जु-विज्ञानसे सर्पविज्ञान हो ही नहीं सकता; क्योंकि दोनों अत्यन्त भिन्न हैं। ऐसा न मानने पर अर्थात् अननुगतके विज्ञानसे भी अन्यका विज्ञान स्वीकार कर लेने पर शुक्ति आदिके विज्ञानसे भी सर्पादिके विज्ञान-की प्राप्ति होगी।

इस पर एक प्रश्न है कि रज्जु-सर्पके प्रसंगमें सर्प, माल्य आदिके दर्शनकालमें रज्जुका अनुभव नहीं होता, परन्तु मृद्-घटके प्रसंगमें ऐसा नहीं होता। घट-दर्शन कालमें ही मृत्तिकाका भी अनुभव होता है। कौन नहीं जानता कि यह मृत्तिका ही घट है ? इसलिए जहाँ कार्यानुभव दशामें ही कारणका भी अनुभव होता हो, वैसा ही उदाहरण देना चाहिए। इसीलिए मृत्तिका और उसके विकारका दृष्टान्त दिया गया है। इसका उत्तर यह है कि यदि ऐसा होता तो इस दृष्टान्तके दार्ष्टान्तिमें भी प्रपञ्चकी अनुभव-दशामें भी ब्रह्मका अनुभव होना चाहिए, परन्तु ऐसा होता नहीं। एक साथ प्रपञ्च और ब्रह्म दोनोंका अनुभव सार्वजनिक अनुभवके विरुद्ध है। मृत्तिका और घटके समान ब्रह्म और प्रपञ्चकी सामानाधिकरण्य प्रतीति नहीं होती। ऐसी दशामें दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिकी अनुरूप संगति नहीं हो सकती।

इसपर यह कहा जा सकता है कि प्रपञ्चानुभवकी दशामें भी सद्रूप-कारण ब्रह्मस्वरूपका अनुभव होता है। 'सन् घटः', 'सन् पटः' इत्यादि स्थलमें जो घट-पटके साथ जुड़ा हुआ है, वह 'है' तो ब्रह्मसत्ता ही है। इसलिए दोनोंका सामानाधिकरण्य अनुभवमें आता है। इसका उत्तर यह है कि आपके मतमें घटमें भासमान सत्ता व्यावहारिक है, पारमार्थिक ब्रह्मस्वरूप नहीं। इसलिए ब्रह्म और प्रपञ्चका युगपत् अनुभव नहीं है। वस्तुतः बात यह है कि एकके विज्ञानसे दूसरेका विज्ञान होनेमें केवल इतना ही कारण है कि कारणसे कार्य अनन्य है। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई प्रयोजन नहीं है। 'प्रकृतिविकारा-व्यतिरेकन्याय'से एक विज्ञानसे सर्व-विज्ञानकी व्याख्या कर लेनी चाहिए। ऐसा भाष्यकारका कहना है। सर्व-विज्ञानमें यह नियम कदापि नहीं है

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कि कार्यानुभवकी दशामें ही कारणका अनुभव हो। पहले ही कह चुके हैं कि दृश्य, जड़, विकारी प्रपञ्चका अपने अत्यन्ताभावके अधिष्ठान ब्रह्मके साथ सामानाधिकरण्य नहीं हो सकता। अनन्यता रज्जु-सर्प और मृद्-घटके प्रसंगमें एक-सी है। जो विलक्षणता दोनोंमें बतायी गयी है उससे कुछ अन्तर नहीं पड़ता; क्योंकि भ्रमके रूप विचित्र-विचित्र होते हैं। अनेकों प्रकारके निमित्त होनेके कारण नैमित्तिक भ्रमोंमें भी भेद होता है। रज्जु-सर्प भ्रम सादृश्यनिमित्तक है, परन्तु आकाश-नीलिमा भ्रम सादृश्यनिमित्तक नहीं है। स्वप्नके भ्रम तो और भी विलक्षण होते हैं; क्योंकि वहाँ बिना त्रिपुटीके एक ही साक्षीमें सब दीखते हैं। भाष्यमें भी मृद्-घट और मृगतृष्णा-जल दोनों भ्रमोंका एक साथ ही निरूपण किया गया है। वे कहते हैं कि घट, करक, आदिके आकाश महाकाशसे अभिन्न हैं। जैसे मृगतृष्णाके जल आदि ऊसर आदिसे अनन्य हैं, वैसे ही हैं ब्रह्मसे अनन्य यह प्रपञ्च; क्योंकि प्रपञ्चका स्वरूप दृष्ट-नष्ट और अनिर्वचनीय है। यह स्पष्ट है कि दृष्ट-नष्ट स्वरूपत्व और अनिर्वचनीयत्व रूप हेतु दोनों ही दृष्टान्तोंमें समान हैं। ये दृष्टान्त मृद्-घटके भी उपलक्षण हैं। इसलिए पृथक् रूपसे उनके वर्णनकी आवश्यकता नहीं है।

इतना सब निरूपण करनेपर भी यह प्रश्न ज्योंका त्यों रह गया कि छान्दोग्य श्रुति रज्जु-सर्पादिके दृष्टान्तका परित्याग करके मृद्-घटादिका दृष्टान्त क्यों देती है? इस प्रश्नका उत्तर होना चाहिए। अच्छा, तो सुनिये—

यह लोक-प्रसिद्ध व्यवहार है कि रज्जुज्ञानसे सर्पादि बुद्धिका जैसा बाध होता है, वैसा मृद्-बुद्धिसे घटादि का बाध नहीं होता। परन्तु यह लोक-प्रतीति अशुद्ध है। ठीक वैसे ही, जैसे कि रज्जुमें सर्पका भ्रम है, मृत्तिकामें घट-बुद्धि भी भ्रम ही है। इसी बातको ध्यानमें रखकर मृद्-घटका दृष्टान्त दिया गया है। जैसा कि श्रुति कहती है— **मृत्तिकेत्येव सत्यम्'**। यदि मृत्तिका और घट दोनों समान सत्य होते तो केवल मृत्तिका ही सत्य है—यह सूचित करनेके लिए 'एव' लगानेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। इस 'एव' के द्वारा श्रुति यह अवधारण कराती है कि केवल मृत्तिका ही सत्य है। दोनोंके समान सत्य होनेपर इस 'एव' की क्या संगति लग सकती है? इस वाक्यका परिशेष यह है कि **'घट इति तु असत्यम् एव'** अर्थात् 'घड़ा' ऐसा कहना और समझना तो असत्य ही है। यही अभिप्राय माननेपर 'वाचारम्भण' शब्द भी संगत होता है। 'वाचारम्भणम्' का अर्थ है वाणीका आलम्बनमात्र अर्थात् केवल नाम। विकार नामकी कोई वस्तु नहीं है यही उसका तात्पर्य है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यही बात भाष्यकारने कहा है—"जैसे लोकव्यवहारमें रज्जु ही सर्प-बुद्धिसे सर्प कही जाती है, जैसे मिट्टी ही अन्य-बुद्धिसे ही पिण्ड, घटादि कही जाती है, परन्तु विवेक होनेपर रज्जुसे अतिरिक्त 'सर्प' शब्द और 'सर्प' बुद्धि नहीं हैं। मृत्तिकाका विवेक होनेपर घटादि शब्द और बुद्धि नहीं है, वैसे ही सद्ब्रह्मका विवेक हो जानेपर 'विकार' शब्द और विकार-बुद्धि दोनों ही निवृत्त हो जाते हैं।" भाष्यकारका यह आशय स्पष्ट है कि जैसे रज्जु-सर्प भ्रान्तिसे अध्यारोपित है, इसी प्रकार मृद्-घट भी भ्रान्तिसे ही अध्यारोपित है। उन्होंने स्वयं श्रीमुखसे ही यह बात कही है कि 'कार्य और उसके धर्म अविद्यासे ही अध्यारोपित हैं।'

दार्ष्टान्तमें सद्-विवेक दर्शनका अर्थ है—'यह सत् ही है'—ऐसी बुद्धि। व्यवहार-कालमें यह जगत् सद्-बुद्धि और 'इदम् बुद्धि' दोनोंका विषय हो रहा है। जब यह सृष्टिके पूर्व कालके समान अब भी 'सत् ही है यह, सत्से अतिरिक्त नहीं'—इस बुद्धिका विषय होता है, तब इस जगत्का मिथ्यात्व अवगत हो जाता है। केवल सद्-बुद्धि मात्रसे नहीं। पहले ही कहा जा चुका है कि घट-पटमें सत्पना अनुगत है; क्योंकि उनमें सामानाधिकरण्य है। 'मिट्टी घड़ा है'—यह दूसरी बात है और 'मिट्टी ही है घड़ा नहीं'—यह दूसरी बात। इसीसे आचार्यने कहा—'जिन्हें मृत्तिकाका ठीक-ठीक विवेक हो जाता है, उनके लिए घटादि शब्द और घटादि बुद्धि—दोनों ही निवृत्त हो जाते हैं। मृत्तिका-ज्ञानका अर्थ 'केवल मिट्टी ही है'—ऐसा ज्ञान है, 'मिट्टी है' इतना ही नहीं। 'मृत्तिकेत्येव' के साथ 'एवकार' का यही अर्थ ज्ञात होता है। इससे यह बात सिद्ध हो गयी कि जो आधुनिक विद्वान् मिट्टी और घड़ाका अबाधित सामानाधि-करण्य बतलाते हैं और उनकी समान व्यावहारिक सत्ता स्वीकार करते हैं, वह सर्वथा असंगत है। यदि उनकी बात मान ली जाय तो 'घट है' इसमें घटपना और 'है'पना दोनोंकी समान सत्ता स्वीकार करनी पड़ेगी। परन्तु ऐसा मानना युक्तियुक्त नहीं है। परमार्थ सत्य ब्रह्मका ही एक नाम है 'सत्' अथवा 'है'। घटमें परमार्थ सत्ता है नहीं। इसलिए 'घट सत् है'—यह ज्ञान भ्रान्ति ही है। यह ठीक वैसा ही है जैसे रज्जुमें सर्पके अस्तित्वका ज्ञान।

यह कहना भी सही नहीं है कि सर्पमें प्रातिभासिक सत्ता प्रतीत होती है, व्यावहारिक और पारमार्थिक नहीं; क्योंकि सत्तामें त्रिविधताकी कल्पना ही अप्रामाणिक है। आरोपित पदार्थके अधिष्ठान सत्तासे अतिरिक्त सत्ताका अभाव होता है। इसलिए सर्पमें भी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रज्जुगत सत्ता ही भास रही है। रज्जुमें भी ब्रह्मगत सत्ता ही भास रही है। ब्रह्मसत्तासे अतिरिक्त व्यावहारिक सत्ता नामकी नयी वस्तु नहीं है। यदि आरोपितमें अधिष्ठान सत्तासे अतिरिक्त सत्ताको स्वीकार करें तो अधिष्ठानके ज्ञानसे आरोपितका वाध ही नहीं होगा। अन्य सत्ताके ज्ञानसे अन्य सत्ताका वाध तो ऐसा ही है मानो घट-ज्ञानसे पटका वाध होता हो। यदि ऐसा माना जाय कि अधिष्ठान और आरोप्यका भाव ही वाधका निमित्त वन जायगा, तो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि सत्ताभेद स्वीकार कर लेनेपर अधिष्ठान और आरोप्य भावकी ही सिद्धि नहीं होगी। भाष्य सत्ताभेदका निषेधक है। **'एकं च पुनः सत्त्वम्'**—क्योंकि सत्ता एक ही है।

यदि यह प्रश्न उठाया जाय कि भगवान् भाष्यकार ब्रह्मात्मैक्यविज्ञान के पूर्व सभी व्यवहारोंकी सत्यता स्वीकार करते हैं, इससे उनके मतमें भी एक व्यावहारिक सत्यकी सिद्धि होती है। वहाँ सत्यत्वोपपत्तिका अर्थ सत्यत्वबुद्धयुपपत्ति है और वह भ्रान्तिका ही पर्याय है। इसके लिए उन्होंने अनृत बुद्धि, अनृतत्व बुद्धि आदि शब्दोंका प्रयोग किया है। इसलिए सत्ताके त्रैविध्यकी कल्पना भाष्यविरुद्ध है और अयुक्त है। भाष्यकारकी एक-सत्यकी घोषणाका दूसरा कोई अर्थ नहीं लगाया जा सकता।

कोई-कोई ऐसी कल्पना करते हैं कि शुक्ति-ज्ञानसे रजत-ज्ञानका वाध हो जाता है—यह तो एक लौकिक वात है और अज्ञानकालकी है। ब्रह्मज्ञान होनेपर शुक्तिज्ञान भी वाधित हो जाता है और वह श्रवण-मननादिके अनन्तर होता है। यदि इस प्रकार वाधक-ज्ञानके पूर्वोत्तर भावके कारण ही अथवा अचिरोत्पत्ति और चिरोत्पत्तिके कारण ही सत्तामें न्यूनाधिक भावकी कल्पना कर ली जाय तो दिनभरमें प्रातिभासिक सत्तासे भी न्यून सत्तावाली अनेक सत्ताओंकी कल्पना करनी पड़ेगी। फलितार्थ यह है कि जैसे यह सब सत् ही है अर्थात् सत्से अतिरिक्त कुछ भी नहीं है—इस ज्ञानसे प्रपञ्चका मिथ्यात्व 'वाचारम्भणमात्रत्व'—नाममात्रत्व विज्ञान होता है। उसी प्रकार **'मृत्तिकेत्येव सत्यम्'**—इस ज्ञानसे भी घटादिका मिथ्यात्व ही सिद्ध होता है। श्रुतिके उपपादनकी यही रीति है। इसीसे रज्जु-सर्पादिके दृष्टान्तका अनादर करके मृद्-घटादिका दृष्टान्त दिया गया है। सन्मात्रमें नानात्वके समान मृन्मात्रमें कल्पित घटादि भी वाचारम्भणमात्र अर्थात् नाममात्र और मिथ्या हैं तथा मृत्तिका-स्थानीय ब्रह्म ही एकमात्र अद्वितीय सत्य है। ●

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(एक लोक-प्रचलित प्राचीन कहानी)

समे

एक था राजा. उसका नाम था राजहंस. वह हंसके समान विद्वानोंको पहचानता और उनका आदर करता था. क्षीर-नीर विवेकी ही तो हंस होता है. उसके तलवारका वार अनिवार्य था. मुसकानसे कंचनकी वर्षा होती थी. विद्या और वैभव, कला और विज्ञान उसमें साथ-साथ निवास करते थे. उसके मन्त्री थे चार चातुर्यके चमत्कार. उनमें एक था सुमति. उसके मतिकी थी सर्वत्र गति. उसका उपमान था वृहस्पति. मनमें थी राजाके प्रति नितान्त रति. उसके मतिकी कुशलता देती थी सफलता. राजा करता था उसकी चर्चा और अन्तरमें करता था अर्चा.

किसी दिन आया एक विद्वान्—कला-कौशलका निधान. विशिष्ट और अनुशिष्ट लोकतत्त्वका अनुशीलन और शास्त्रका परिशीलन उसके रोम-रोममें था व्याप्त. उसका नाम था निरञ्जन. वह था जनरञ्जन. बुद्धि थी विस्मापन, आच्छादितका करती प्रकाशन. शिष्टाचारके अनन्तर राजाने शालीनताके साथ प्रश्न किया—'मैं आपकी क्या सेवा करूँ?' निरञ्जन पण्डितने कहा : 'सुनिये, महाराज! आये हैं हम आज. न कुछ लेना, न देना, न याचना, न कामना. आप मेरे गुण और कौशलकी परीक्षा कीजिये. जो कुछ पिपृच्छिषा (पूछनेकी इच्छा) हो, पूछ लीजिये.' राजाने हँसकर कहा : 'अच्छा, आप जानते हैं सब कुछ तो शीघ्र यह बतलाइये कि मेरी पत्नी भानुमतिके शरीरमें कहाँ-कहाँ तिलचिह्न हैं?' निरञ्जन पण्डित था प्रत्युत्पन्नमति. उसको प्राप्त था सरस्वतीका प्रसाद. दृग्गणितकी विद्यासे देखकर बोला—'महाराज! आपकी धर्मपत्नीके शरीरमें दाहिनी जांघके अतिरिक्त और कहीं भी तिल नहीं है.' बात थी सच्ची, परन्तु राजा करने लगा माथापच्ची. उसकी कल्पना हुई कच्ची—यह तिल-चिह्न कैसे ज्ञात हुआ? यह शास्त्रका विषय नहीं है. यह होगा व्यभिचारका चमत्कार. 'इस दुराचारीको मार डालो.' तुरन्त सुमति मन्त्रीको आज्ञा दे दी. सुमति मन्त्रीने समझाया. नीच-ऊँच दिखलाया. विद्याका प्रभाव बतलाया. परन्तु राजहठ अडिग रहा. सुमतिने सिर झुकाया पण्डितको अपने घरमें छिपाया. पुत्रवधूके वेषमें अपने घरमें रख लिया.

राजाका पुत्र था सुकर्मा. शिकारका प्रेमी. सेनाके साथ वनमें

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मित्र

श्री पशुपति झाके एक संस्कृत लेखके आधारपर

गया. सेनाको छोड़ दिया. हिरनके पीछे दौड़ गया—दूर-दूर, बहुत दूर. हिरनकी छलांग राजकुमारसे छुयी न जा सकी. हिरन छोड़ गया. घोड़ा सांस तोड़ गया. सैनिकोंकी ओर लौटा, परन्तु वहाँ एक बालक भी न मिला छोटा. समय आ गया खोटा. लगी प्यास. जीवनकी छूटी आस. छूट गयी सेना. रहा न चवेना. माता-पिताका स्नेह, पत्नीका प्रेम, हृदय-पटलपर कौंध-कौंधकर सताने लगे. अब मरा, तब मरा. हाल-बेहाल हो गया. आमके नीचे पड़ गया.

सामनेसे आया भालू. उसके पीछे सिंह. प्राणके लाले पड़ गये. राजकुमार उतावलीसे पेड़पर चढ़ गया. पीछे-पीछे भालू भी. सिंह नीचे बैठ गया. जिस डालीपर राजकुमार, उसीपर भालू सरदार. यह काल है कि काला? राजकुमारका हृदय जोरसे धड़कने लगा. मृत्यु सम्मुख खड़ी थी. भालूने कहा : 'हम दोनों एक डालपर बैठे हैं. भाई-भाई हैं. सच्चे सखा हैं. दोनों विपत्तिमें हैं. यह सिंह हम दोनोंका शत्रु है. दोनोंको खाना चाहता है. मैं तुम्हारी रक्षा करूंगा, तुम हमारी. आओ, मैत्रीकी शपथ लेकर जीवन-पथको निष्कंटक कर दें. आनन्दसे रहेंगे.'

विश्वस्त होकर दोनों स्नेहसे बैठ गये. थोड़ी रात बीतनेपर भालूने कहा : 'आओ, तुम मेरी गोदमें सो जाओ.' वह पूर्ण विश्वासके साथ सो गया. सिंहने भालूको सम्बोधित करके कहा : देखो, भाई. हम हैं एक वनके रहनेवाले. हम दोनोंका एक ही लक्ष्य, मनुष्य है हमारा भक्ष्य. यह नहीं है रक्ष्य. गिरा दो गोदसे. खायें हम मोदसे. भालूने सिंहकी बात नहीं मानी. राजकुमार उठा. भालू विश्वासपूर्वक उसकी गोदमें सो गया. सिंहने कहा : 'अरे, राजकुमार! गिरा दे इसे नीचे. मैं मारकर खाऊँ या यह, मरना तो तुम्हें पड़ेगा ही. करो मत सोच, इसमें क्या संकोच. मैं इसको चबा जाऊँगा, तुम सुखसे अपनी राजधानीमें लौट जाना.' राजकुमारके मनमें भय छा गया. वह सिंहकी बातोंमें आ गया. उसने भालूको गिरानेका प्रयत्न किया. प्रभुने भालूको सावधानीका रत्न दिया. सिंह विफल होकर भाग गया.

अब आया भालूको क्रोध, परन्तु बना रहा मित्रताका बोध. न क्षोभ, न लोभ. राजकुमारको पकड़कर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उसकी जीभपर लिख दिया : स से मि रा. छोड़कर चला गया. राजकुमार विक्षिप्त हो गया. वह उन चार अक्षरोंके सिवाय कुछ बोल नहीं सकता था. भटकते-भटकते संयोग वश अपनी नगरीमें पहुँच गया. नगरीका प्रसाद विषाद बन गया. राजाको सूचना मिली. दुःखका समुद्र उमड़ पड़ा. यह क्या हो गया ? रंगमें भंग. सुखमें दुःख. सोचनेसे क्या लाभ ? क्या इसका कोई प्रतिकार सम्भव है ? इस आगको कौन बुझावेगा ? बहुत चिकित्सा हुई. बहुत विचिकित्सा की गयी, परन्तु फलमें केवल कुत्सा मिली.

मन्त्री सुमतिने समयकी गति पहचानी. समयके पूर्व कर्म फलते नहीं हैं, उसने राजासे निवेदन किया : 'मेरी पुत्रवधू है पण्डिता. उसकी बुद्धि है अखण्डिता. वह है नाना गुणमण्डिता. चिकित्सामें कुशल. रोग-निवृत्तिमें सफल. आप आज्ञा कीजिये. आशा रखिये. विश्वासमें सुधाका निवास है.' राजाने कहा : 'अविलम्ब लाइये. चिकित्सामें लगाइये. वह जो माँगे, मिलेगा. पुत्र-वधूके रूपमें निरञ्जन पण्डित घूँघट काढ़े आये. गाढ़ेमें काम आये. सब कुछ जान गये. विश्वासघातका पाप देता है ताप. उन्होंने जिह्वाके एक-एक अक्षरके अर्थका उद्‌घाटन किया. पहला अक्षर था—'स' अत्र सुनिये उसका सार ।

प्रशंसा पानेकी वासना

छोटेसे गाँवमें छप्परकी झोपड़ीमें एक सौभाग्यवती स्त्री रहती थी। जीवन भरकी कमायीमें-से काट-छाँट करके उसने एक अँगूठी बनवायी। सोनेकी चमाचम। उसको अपेक्षा थी कि देखते ही गाँवके लोग प्रश्नोंकी झड़ी लगा देंगे—कहाँ, कब, कैसे, कितनेमें बनवायी इत्यादि ? परन्तु गाँवमें किसीने कुछ नहीं पूछा। उसे बड़ी निराशा हुई। सोचने लगी—इस गाँवके लोग गुणग्राही नहीं हैं। अब यहाँ रहना उचित नहीं है। रात्रिके समय उसने अपनी झोपड़ीमें आग लगा दी। आग बुझानेके लिए लोग दौड़े-दौड़े आये। आगकी रोशनीमें एकने आश्चर्य चकित होकर पूछा—'अरी चम्पूकी चाची ! तूने यह अँगूठी कब बनायी ?' उसने, उत्तर दिया—'अगर यह सवाल तुमने दिनमें कर लिया होता तो मैं घरमें आग क्यों लगाती ?

मनुष्यके मनमें अपनी प्रशंसा पानेकी इतनी वासना होती है कि वह घरमें आग लगाकर भी उसे प्राप्त करना चाहती है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Well Known Products :

* BHARAT VELVET
* BHARAT TERENE SUITINGS
* BHARAT TERENE SHIRTINGS
* NYL-ON TERENE SAREES & BUSH SHIRTING

Manufactured by :—

BHARAT VIJAY VELVET & SILK MILLS

Proprietors :

The Aditya Textile

Industries Pvt. Ltd.

Kurla Andheri Road,

Bombay—70

Phone : 55146/47

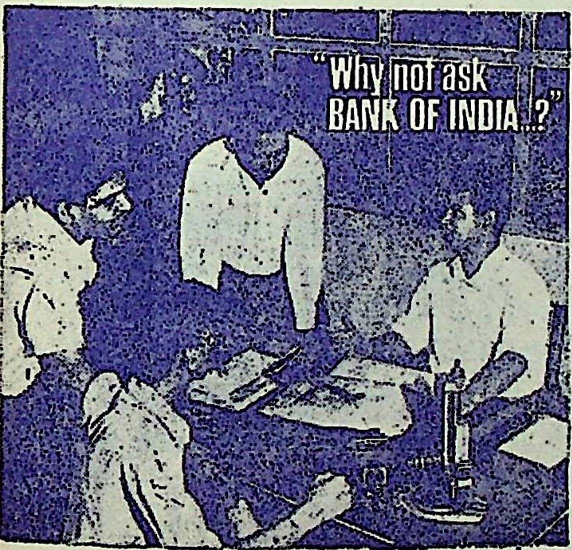

yes,

that's what a progressive Small-Scale Industrialist will do when the question of finance arises.

Bank of India assists Small-Scale Industries at the specially low rate of 8% interest p.a., and the most reasonable margins.

■ *Visit our nearest branch for details*

BANK OF INDIA

YOU HAVE A FUTURE IN THIS STAR

If you bank well with the Bank of India, you can well bank on the Bank of India

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

WITH
BEST
COMPLIMENTS

From :

Smt.
Laxmiben
Sevakram

Gazdar House
DHOBI TALAO
BOMBAY-2

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सद्भाव-प्रतिपन्नानां
वचने का दरिद्रता।
अङ्कमारूह्य सुप्तं च
हन्तुं किं नाम पौरुषम् ॥

जिनके हृदयमें सद्भाव भरा हुआ है, उनकी वाणीमें दरिद्रता क्यों आये ? जो अपनी गोदमें विश्वस्त होकर सो रहा है, उसको मार डालनेमें पौरुष क्या है ?

दूसरा अक्षर है 'से'. इस अक्षर-का सार-रस सेवन कीजिये :

सेतुबन्धे समुद्रस्य
सरस्वत्याश्च सङ्गमे।
ब्रह्महा मुच्यते तत्र
मित्र-द्रोही न मुच्यते ॥

ब्रह्मघाती पुरुष भी समुद्रके सेतु-बन्ध तीर्थमें और प्रयागके त्रिवेणी-संगमपर स्नान करके पाप-मुक्त हो सकता है, परन्तु मित्र-द्रोहीको वहाँ भी मुक्ति नहीं मिल सकती.

तीसरा अक्षर है—'मि'. इसमें जो मधु-मधुर हृदय औषध है उसका आस्वादन कीजिये :

मित्रद्रोही कृतघ्नश्च
यश्च विश्वास-घातकः।
स नरो नरकं याति
यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥

मित्रद्रोही, कृतघ्न और विश्वास-घाती मनुष्यको तबतक नरकमें रहना पड़ता है जबतक आकाशमें चन्द्रमा और सूर्य रहते हैं.

चौथा अक्षर है—'रा'. यह 'रा' का रत्न राशि-राशि रश्मियोंका विकीरण कर रहा है :

राजन् ! हि राज-पुत्रोऽयं
मृगयाऽर्थं वनं गतः।
ऋक्ष-व्याघ्र - गृहीतश्च
चक्रे विश्वास-भञ्जनम् ॥

राजन् ! यह राजकुमार शिकार खेलनेके लिए वनमें गया था. वहाँ इसे भालू और सिंहने पकड़ लिया और इसने विश्वासघात किया. यह विक्षिप्तता विश्वासघातका ही फल है.

इन चार अक्षरोंका अर्थ श्रवण-मात्रसे ही राजकुमार विक्षिप्ततासे मुक्त, बुद्धिसे युक्त और स्वस्थ हो गया. राजाने प्रश्न किया :

अन्तःपुरे सदा वासः
प्राणिनां नैव सङ्गमः।
ऋक्ष-व्याघ्र-मनुष्याणां
कथं जानासि सुन्दरि ॥

तुम रहती हो अन्तःपुरमें, प्राणियोंसे मिलना होता नहीं. तुम ऋक्ष, सिंह और मनुष्यका संवाद कैसे समझती हो ?

पुत्रवधूने उत्तर दिया :

गुरुदेव - प्रसादेन
जिह्वाऽग्रे मे सरस्वती।
तेनाऽहं भूप ! जानामि
भानुमत्यास्तिलं यथा ॥

सद्गुरु और इष्टदेवताके प्रसादसे मेरी रसनाकी नोकपर सरस्वती नृत्य करती है. राजन् इसीसे मैं सब

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जानती हूँ, ठीक वैसे ही जैसे भानुमतीके जाँघका तिल.

राजाका हृदय अमन्द आनन्द-संदोहसे तुन्दिल होकर उमंगतरंगके हिंडोलेपर झूलने लगा. निरञ्जन पण्डित और सुमति मन्त्री दोनोंको मनोवाञ्छित पारितोषिक प्राप्त हुए. निरञ्जन पण्डित राज पण्डित हो गये.

न मैं, न तुम, दफ्तर गुम

समाधिने विचारसे कहा—भानजे ! तू बहुत चंचल है। कहाँ-कहाँ जाता है ? कब-कबकी सोचता है और क्या-क्या रूप धारण करके आता है ?

विचार—मासी ! तुम अन्धी हो। तुमने मुझे कभी देखा ही नहीं। फिर मुझे दोष क्यों लगा रही हो ?

समाधि—जब देखो तब, तुम कुछ न कुछ खटपट करते ही रहते हो।

विचार—तुमको केवल खटपट ही मालूम पड़ती है। मैं तुम्हारे शरीरपर लगी मैल धोता हूँ। बालोंमें छिपे जुएँ और कपड़ोंमें छिपे खटमल निकालकर फेंकता हूँ। तुम्हारी कुटियाका अन्धेरा दूर करनेके लिए प्रकाश करता हूँ।

समाधि—सचमुच वत्स ! तुम्हीं मेरे नेत्रके अमृताञ्जन हो। तुम न होओ तो मुझे यह भी ज्ञात न हो कि मैं कहाँ बैठी हूँ और कौन हूँ ? आओ, हम तुम दोनों एक हो जायँ।

विचार—हम दोनोंके एक हो जानेपर न मैं 'विचार' रहूँगा, न तुम 'समाधि'। तब केवल हम दोनोंका स्वयंप्रकाश अधिष्ठान ही रहेगा। न मैं, न तुम, दफ्तर गुम।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्री दयानन्द भार्गव
(एम० ए०)

जैन-दर्शनमें अहिंसा

संस्कृत विभागाध्यक्ष
रामजस महाविद्यालय,
दिल्ली

★

तीर्थङ्कर श्री महावीर स्वामीने ईसासे पूर्व पंचम शताब्दीमें किसी नवीन धर्मका प्रवर्तन किये विना प्रागैतिहासिक कालके महात्मा ऋषभदेवके द्वारा निर्दिष्ट पथका ही अनुसरण किया और उनकी सर्वात्म-साम्यमूलक करुणार्द्रवाणी विश्वमें गूँज उठी। उन्होंने निर्भय स्वरसे घोषणा की—'सचमुच वह तुम्हीं हो जिसको तुम मारने योग्य समझते हो।' (आचारांग सूत्र १।५।५) भगवान् ऋषभदेवने कहा है कि महापुरुष वे ही हैं जिनके चित्तमें समता, शान्ति, अक्रोध और परहितका निवास है। (भागवत ५।३) उनका कहना है कि प्रमाद और ऐन्द्रियक तृप्तिकी भावनासे हिंसाका जन्म होता है। इस प्रसंगमें बार-बार 'प्रमत्त' शब्दका प्रयोग किया गया है। इसका अर्थ है कि सम्पूर्ण दोषोंका मूल प्रमाद ही है। आज भी उनकी वाणी क्रूर-प्रकृति, कलह-परायण प्राणियोंके कानोंमें अमृतकी वर्षा कर रही हैं। लेशमात्र सुखकी प्राप्तिके लिए लोग एक-दूसरेसे वैर करते हैं। उन वेचारोंको यह पता नहीं है कि इसके फलस्वरूप अनन्त दुःखकी प्राप्ति होती है। (भागवत ५।५)

जैन-दर्शनमें महात्मा ऋषभदेवकी तथा अन्य बाईस तीर्थङ्करोंकी वाणियाँ साक्षात् नहीं मिलती हैं परन्तु यह हमारे लिए सौभाग्यकी बात है कि अन्तिम तीर्थङ्कर श्री महावीर स्वामीकी वाणी अंशतः मिलती है। प्रमाद और विषयासक्ति हिंसाका मूल हैं। जो पुरुष क्रोध, मान और लोभ आदि चित्तके कषायोंका हनन करता है वही वीर है। सम्भवतः इस दोषरूप कषायको अपनानेवालोंको ही कषायी (कसाई) कहा गया हो। कोई भी प्राणी दुःख नहीं चाहता इसलिए कोई भी हिंसाके योग्य नहीं है। सत्य भाषण आदि दूसरे व्रत भी अहिंसाके अन्तर्गत ही हैं। इसीलिए उनका कहना है कि संयमपूर्वक चलना, खड़ा होना, बैठना-सोना, भाषण और भोजन होना चाहिए। इससे पापकर्म स्पर्श नहीं करता। सब भूतोंमें आत्म-दृष्टि ही हिंसाका मूल है (दशवै-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कालिक ४।९)। इस प्रकार श्री ऋषभदेवसे लेकर महावीर स्वामी पर्यन्त अहिंसाकी एक ही परम्परा है। वह राग-द्वेषका सर्वथा निषेध करती आयी है।

ईसाकी प्रथम शताब्दीमें कुन्द-कुन्दाचार्यने इसी अभिप्रायको पुष्ट करनेके लिए कहा है कि राग-द्वेष मारनेवाले और मारे जानेवाले हन्ता और हत—दोनोंकी ही प्राणहानि करते हैं। (प्रवचनसार और उसकी तत्त्वदीपिका टीका) यदि कदाचित् दूसरेकी हिंसा न भी होती हो तब भी राग-द्वेष करनेवाला अपनी हिंसा तो करता ही है। द्रव्यहिंसा ही हिंसा नहीं है, भावहिंसा भी हिंसा है। तेरहवीं शताब्दीमें जयसेनाचार्यने इस अभिप्रायको अत्यन्त स्पष्ट करके समझाया है—जैसे कोई मनुष्य जलता हुआ लोहका टुकड़ा उठाकर किसी पर प्रहार करना चाहे तो सबसे पहले उसका हाथ ही जलेगा। यह नियम नहीं है कि दूसरेको वह टुकड़ा लग ही जायगा। ठीक इसी प्रकार यह अज्ञानी जीव पहले स्वयं राग-द्वेष-मोह आदिके रूपमें परिणत होकर जो कि जलते हुए लोह-पिण्डके समान हैं, सबसे पहले निर्विकार स्वसंवेदन ज्ञानस्वरूप अपने प्राणोंको ही दुःख पहुँचाता है पीछे उसके द्वारा दूसरेके प्राणों पर चोट पड़े या न पड़े—इसका कोई नियम नहीं है। (प्रवचनसारकी तात्पर्य वृत्ति २।५७)।

कुन्दकुन्दाचार्यने कहा है कि जीव चाहे जीवित रहे चाहे मर जाय परन्तु जिसके आचरणमें संयम नहीं है, वह स्वयं ही अपनी हिंसा कर रहा है। अशुद्धभावका उपयोग आन्तरिक हिंसा है। दूसरेका प्राण-वियोग बहिरंग हिंसा है (तत्त्वप्रदीपिका ३।१७)।

जैन-दर्शनमें भी यह बात मान्य है कि कोई किसी दूसरेके सुख-दुःखका हेतु नहीं हो सकता है। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि जो तुम्हारी बुद्धिमें यह मूढ़ता बैठ गयी है कि मैं दूसरोंको दुःखीसुखी करता हूँ या बद्ध-मुक्त करता हूँ वह व्यर्थ और मिथ्या है (समयसार २६६)।[1]

इसी भावको भरकर अमृतचन्द्राचार्यका एक दूसरा कलश उपस्थित होता है। अपने कर्मफलके उदयसे सदा मृत्यु, जीवन, दुःख और सुख—सब कुछ नियत रूपसे ही होता रहता है। दूसरा दूसरेको मृत्यु, जीवन, सुख और दुःख देता है—यही अज्ञान है।[2]

---

१. दुःखितसुखितान्जीवान्करोमि बन्धयामि तथा विमोचयामि।
या एषा मूढमतिर्निरर्थिका सा खलु ते मिथ्या॥

२. सर्वं सदैव नियतं भवति स्वकीय-कर्मोदयान्मरण-जीवित-दुःख-सौख्यम्।
अज्ञानमेतदिह यत्तु परस्य कुर्याद् अन्यः पुमान्मरण-जीवित-दुःख-सौख्यम्॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अब प्रश्न उदय होता है कि ऐसी स्थितिमें पौरुष (प्रयत्न) का क्या स्थान रहा ? यह प्रश्न ठीक है। इसका उत्तर यह है कि जैन-दर्शनमें दृष्टि-भेदसे दोनोंकी संगति लगायी जाती है। एक है निश्चय-नय और दूसरा है—व्यवहार-नय। निश्चय अपने अन्दर रहता है और व्यवहार दूसरेके साथ होता है। जो साधक आत्मचिन्तन-परायण है वह केवल द्रष्टा और ज्ञाता होकर ही रहे, कर्त्तापन और भोक्तापनकी वुद्धि छोड़ दे। इसी अभिप्रायसे कोई किसीको सुख-दुःख नहीं देता—यह दृष्टिवादी वचन कहा गया है। व्यवहारमें तो कर्त्तापनकी कल्पना होती ही है। मुनिधर्म निश्चय-प्रधान है और श्रावकधर्म व्यहार-प्रधान। उपादान हेतुकी अपेक्षासे प्रवृत्त साधक निश्चय-नयमें अपने आपको ही छहों कारकोंके रूपमें प्रकट देखता है, अर्थात् वह अपनेको ही कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण मानता है। निमित्त कारणकी अपेक्षासे व्यवहार-नयमें एक-दूसरे परस्पर सुख-दुःखके कारण वन जाते हैं। इसी दृष्टिसे द्वितीय शताब्दीमें समन्तभद्रने पौरुष और भाग्यका समन्वय किया है। अस्तु।

अब प्रश्न यह है कि जब जीव दूसरेको सुख-दुःख नहीं दे सकता तब वह हिंसक या अहिंसक कैसे हो सकता है ? इसका उत्तर यह है कि यह ठीक है कि यह जीव किसी दूसरेको सुख-दुःख नहीं दे सकता, परन्तु अपने मनमें राग-द्वेष तो करता ही है। इन्हीं दोनोंसे कर्त्ताको हिंसा दोषकी प्राप्ति होती है। भले ही दूसरा कोई मरे या न मरे। जहाँ एकसे राग होगा या द्वेष होगा, वहाँ पक्षपात या क्रूरताका उदय होकर हिंसा अवश्य होगी। प्रवचनसारमें कहा गया है कि जिसका आचार ठीक नहीं है वह किसी न किसीको दुःख पहुँचाये विना नहीं रह सकता।

उमा स्वामीने तत्त्वार्थ-सूत्रकी रचना की है। उनका समय दूसरी शताब्दी है। उन्होंने हिंसाका लक्षण 'प्रमत्तयोगसे दूसरेका प्राणवियोग करना हिंसा है'—ऐसा कहा है। सर्वार्थसिद्धिमें कहा गया है कि प्रमादी पुरुष पहले अपने हाथों अपनी हिंसा करता है, दूसरोंकी हिंसा तो बादमें होती है। इसलिए मनमें पक्षपात और क्रूरताके कारणभूत राग-द्वेषका उदय होना ही हिंसा है। हिंसाको छोड़ देना मुख्य व्रत है और इसीमें सब व्रतोंका समावेश है।

सातवीं शताब्दीमें अकलंकदेवने 'राजवार्त्तिक'में प्रमादका यह लक्षण किया है कि हमारी इन्द्रियाँ हमें कहाँ खींचे लिये जा रहीं हैं, इस प्रचारविशेषको न समझकर जो

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्यवहारमें प्रवृत्त होता है वह प्रमत्त है। जैसे कोई शराबी नशेमें चूर होकर क्या करना, क्या नहीं करना, क्या बोलना, क्या नहीं बोलना—इन बातोंको समझे विना ही व्यवहार करता है। इसी प्रकार जीवस्थान और योन्याश्रय (सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर) को समझे विना ही हृदयमें राग-द्वेषादि दोषोंका उदय होते ही उनसे आविष्ट हो जाता है और हिंसाके कामोंमें लग जाता है, वह अहिंसाका पालन नहीं करता; उसीको प्रमत्त कहते हैं। इन पन्द्रह बातोंसे मनुष्यके जीवनमें प्रमादका उदय होता है—१. भोजन कथा, २. स्त्री कथा, ३. राज्य कथा, ४. देश कथा, ५. मान, ६. माया, ७. लोभ, ८. क्रोध, ९-१३. पाँच इन्द्रियोंके विषयोंकी आसक्ति, १४. निद्रा, १५. प्रणय।

वैसे तो किसी प्राणीको प्राणसे वियुक्त करनेका नाम हिंसा है, परन्तु यह केवल प्रमादसे भी होती है। फिर दुःख पहुँचाने या मारनेकी तो वात ही क्या है? ऐसी स्थितिमें हिंसाके साथ मारनेकी क्रिया क्यों जोड़ी जाती है? इस बातको गम्भीरतासे समझना चाहिए। सब पापोंका मूल प्रमाद ही है। वह प्रमाद जब किसीके प्राण-वियोगका हेतु बनता है तब उसे हिंसा कहते हैं। वही प्रमाद जब झूठ बोलनेके रूपमें प्रकट होता है तो उसका नाम असत्य हो जाता है—यह भी हिंसा ही है। इसी प्रकार और भी समझना चाहिए। जैसे प्रमाद ही जब किसीकी वस्तुको उसके दिये बिना ही ग्रहण करता है तब उसका नाम चोरी होता है, यह भी प्रमाद ही है। प्रमाद ही मैथुनके रूपमें प्रकट होकर ब्रह्मचर्य-विरोधका रूप ग्रहण करता है। वही जब जड़संसर्गी होकर मूर्च्छाके रूपमें प्रकट होता है, तब परिग्रह नामसे कहा जाता है। प्रमादके ही ये पाँचो रूप हैं। असत्य, चोरी आदिसे हिंसारूप पापको अलग बतानेके लिए उसको प्राणवियोग-कारिणी कहा जाता है। यदि ऐसा न कहते तो दूसरे पापोंसे उसका अलगाव ज्ञात नहीं होता। भले दूसरेकी हिंसा न हो, परन्तु अन्तरमें प्रमादके आ जानेसे अपनी हिंसा तो हो ही जाती है।

इसलिए मनुष्यको चाहिए कि अपने शुद्ध स्वरूपमें रहकर अपने मन, वाणी और शरीरकी प्रवृत्तियोंको रोके। जैनदर्शनमें इसीको 'त्रिगुप्ति' कहते हैं। यदि प्रवृत्ति अनिवार्य ही हो तो उसके लिए 'पंच-समिति'की आवश्यकता होती है। 'पंच-समिति' कहते हैं—चर्या, भाषा, एषणा, लेना-देना और त्याग इन पाँचोंमें संयम रखनेको। 'त्रिगुप्ति' और 'पंच-समिति' अष्ट प्रवचना मातृका बनती

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है। जीवनमें इनके आनेपर ही मनुष्य पूर्ण अहिंसक होता है।

'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति'। याज्ञिकोंके इस मतकी विस्तारसे आलोचना मिलती है—राजवार्त्तिकमें। उसका सार यह है कि भले ही पशुकी हत्या यज्ञकी वेदीपर की जाय, उससे पापकी उत्पत्ति अवश्य होती है; क्योंकि उस हत्यासे भी तो वैसा ही प्राण-वियोग होता है जैसा यज्ञके वाहर पशुवध करनेसे। इसलिए लौकिकी और वैदिकी हिंसामें कोई भेद नहीं है। जैनमतमें वेदवचनको प्रमाण न मानकर अनुमान और आप्त वाक्यको प्रमाण माना जाता है।

जो लोग कहते हैं कि आत्मा प्राणोंसे विलक्षण है इसलिए प्राणोंका वियोग होनेपर भी आत्मामें उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता, अतः अधर्मकी उत्पत्ति नहीं होती—यह कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि मृत्युसे दुःखकी उत्पत्ति तो होती ही है। प्राणवियोगसे तत्सम्बन्धी जीवको दुःख होता है, इस कारण वहाँ अधर्म है—यह सिद्ध हो जाता है। क्या अन्यके वियोग और मृत्युसे दुःख नहीं होता। स्त्री, पुत्रके मरण और विरहसे कितना दुःख होता है—इसको संसारी लोग जानते हैं। जो लोग ऐसा कहते हैं कि जीव-राशिसे समाकीर्ण इस विश्वमें अहिंसाका पालन शक्य नहीं है, उनका कहना भी उचित नहीं है, क्योंकि जो ज्ञान-ध्यानमें संलग्न हैं और प्रमादसे विनिर्मुक्त हैं, उनके जीवनमें हिंसाके लिए अवकाश कहाँ है?

वीरसेनने अपने 'धवला' नामक ग्रन्थमें कहा है कि अहिंसा स्वाश्रय वस्तु है। वह अहिंसकके हृदयमें निवास करती है। अहिंसामें पराधीनता नहीं है। कोई-कोई प्राणी दूसरे प्राणीके प्राणवियोग अर्थात् मरणका कारण हो जाता है तथापि वह वद्धय नहीं होता। कोई-कोई प्राणी ऐसे भी होते हैं जो दूसरोंकी हिंसा न करनेपर हिंसक हो जाते हैं। सच पूछो तो अन्तरंग हिंसा ही हिंसा है वहिरंग हिंसा हिंसा नहीं है। इस प्रकार 'धवला' ग्रन्थमें हिंसा-अहिंसाका विशद विवरण किया गया है। 'पुरुषार्थ सिद्धयुपाय' नामक ग्रन्थमें जैनदर्शनका हार्द अभिप्राय दिया हुआ है—

अप्रादुर्भावः खलु
रागाऽऽदीनां भवत्यहिंसेति।
तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसे-
ति जिनाऽऽगमस्य संक्षेपः॥

हृदयमें राग-द्वेषादि दोषोंका प्रकट न होना ही अहिंसा है। उनकी उत्पत्ति ही हिंसा है। बस, जैनागमका सार-संक्षेप यही है। इसका आशय यह है कि अशुद्ध भावोंका उपयोग ही हिंसा है। चाहे असत्य भाषण हो या चोरी, मैथुन हो या परिग्रह—सभी पापोंका हिंसामें ही अन्तर्भाव

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है। देवपूजाके लिए जो हिंसा की जाती है वह भी निन्दनीय है। हिंस्र पशुओंकी भी हिंसा नहीं करनी चाहिए। रोगग्रस्त और दरिद्रतासे संत्रस्तको भी उन्हें दुःखसे छुड़ानेकी दृष्टिसे भी मारना उचित नहीं है। दूसरे ग्रन्थोंमें भी अहिंसाविषयक पुष्कल विचार दिये हुए हैं।

योगेन्द्रदेवने 'परमात्म-प्रकाश' नामक ग्रन्थमें यह सिद्धान्त प्रकट किया है कि शुद्ध आत्मचैतन्यकी रक्षाके लिए अहिंसाव्रत ही एक व्रत है। राजमल्लने अपनी 'पंचाध्यायी'में उसका समर्थन किया है। 'वृहत्स्वयंभू-स्तोत्र'में एक और बात कही गयी है। वह यह कि यदि देवालय आदिके निर्माणमें थोड़ी बहुत हिंसा भी होती हो तो वह दोषकारक नहीं है; क्योंकि जैसे चन्द्रमाकी किरणोंमें एक कलंक डूब जाता है वैसे ही गुणोंके समूहमें एक दोषकी गिनती नहीं होती। अहिंसाका यही व्यावहारिक स्वरूप हैं। गृहस्थ संकल्पपूर्वक हिंसाका त्याग करता है। उसके लिए अपने व्यवसायमें, गृहकर्ममें और आत्मरक्षा-कर्ममें हिंसाका विधान-सम्मत रूप स्वीकृत है। आततायी और आक्रान्त शत्रुको आत्मरक्षाके लिए शस्त्रप्रयोगके द्वारा भी मारनेका विधान है। राजा लोकरक्षाके लिए दण्डका प्रयोग कर सकता है। 'सागर - धर्मामृत'की टीकामें कहा गया है—

दण्डो हि केवलो लोक-
मिमं चामुञ्च रक्षति।
राज्ञा शत्रौ च पुत्रे च
यथादोषं समं धृतः॥

राजा शत्रु और पुत्र—दोनोंके प्रति दोषके अनुसार यदि समान भावसे दण्डका प्रयोग करता है तो वही दण्ड इस लोक और परलोकका रक्षक होता है। जैनागमके अनुसार ऋषभदेव केवल धर्मप्रवर्तक ही नहीं, कर्मप्रवर्तक भी हैं। उन्होंने असि, मषी, कृषि, विद्या, वाणिज्य, शिल्प आदि सभी सुखकारी उपायोंका सक्रिय उपदेश किया है। इसलिए जो लोग कहते हैं कि जैन-दर्शन प्रतिपादित अहिंसा अव्यावहारिक है, उनका ऐसा आरोप ठीक नहीं है; क्योंकि 'उत्तरा-ध्ययन'में भी राजधर्मका उपदेश किया गया है।

इस पर किसी-किसीकी शंका है कि वास्तविक दृष्टिसे प्राणनाश, आत्म-नाश नहीं है; क्योंकि निश्चय प्रज्ञासे प्राण और आत्मा दोनों भिन्न-भिन्न हैं। यदि यह कहा जाय कि व्यवहारमें प्राण और आत्मा अभिन्न हैं तो व्यवहारसे ही बन्धन होगा, निश्चय दृष्टिसे नहीं। यह शंका ठीक है, परन्तु व्यवहार-दृष्टिसे नरकादि दुःख भी हैं न। इसलिए व्यावहारिक रूपसे किसीकी हिंसा करोगे तो व्यावहारिक नरककी प्राप्ति होगी।

इस प्रकार सभी प्राचीन एवं

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कहाँ ढूँढ़ रहे हो ?

एक वृद्धा माता रात्रिके समय सार्वजनिक पथपर कुछ ढूँढ़ रही थी। किसी दयालु सज्जनने पूछा : माँ! तुम यहाँ क्या ढूँढ़ रही हो, मैं तुम्हारी कुछ सहायता करूँ।

वृद्धाने कहा : मेरी सुई खो गयी है, उसीकी खोज कर रही हूँ।

सज्जनने पूछा : कहाँ खोयी थी।

वृद्धा : खोयी तो घरमें थी।

सज्जन : तब यहाँ क्यों ढूँढ़ रही हो ?

वृद्धा : घरमें रोशनी जो नहीं थी।

उन्हें हँसी आ गयी : भला, घर में खोयी वस्तु सड़कपर मिलती है ? वृद्धाने भी उनके स्वरमें स्वर मिलाकर हँस दिया और बोली : मेरे भोले भाई! सारी दुनियाँ यही तो कह रही है। अज्ञानके कारण हृदय में खोये हुए ईश्वरको बाहर ढूँढ़ने जाती है।

न हि गृहे नष्टं वने मृग्यते।

अर्वाचीन आचार्योंने बन्धन और मोक्षका साधन एकमात्र भावको ही बताया है। 'सागर-धर्मामृत'में कहा गया है कि जिसमें बन्धका भाव है वह बद्ध है और जिसमें मुक्तका भाव है वह मुक्त है। यदि ऐसा न होता तो इस जीवोंसे भरे लोक-व्यवहारमें कौन संसारी और कौन मुक्त ? भाव ही बन्धन और मुक्तिका कारण है।

सब कुछ कहनेका निचोड़ यह है कि अहिंसा ही सम्पूर्ण प्राणियोंकी वास्तविक माता है। जैसे अणुसे छोटा और आकाशसे बड़ा और कुछ नहीं है, वैसे ही अहिंसा व्रतसे बड़ा और कोई व्रत नहीं है।[1] जो बाह्य शत्रु-पर विजय प्राप्त करना चहता है उसे अपने आन्तर शत्रुओंकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। केवल लड़ाईमें जो सूरमा है वही सूरमा नहीं कहा जाता। अहिंसा कामधेनु है। इसलिए लौकिक विजय प्राप्त करनेवाले अधिकारीको भी सम्पूर्ण फलोंकी प्राप्तिके लिए अहिंसाकी ही उपासना करनी चाहिए।

---

१. अल्पं यथाऽणुतो नास्ति,
महद् आकाशतो यथा।
अहिंसाव्रततो नास्ति,
तथा परं उरुव्रतम्॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दीपदान

श्री कान्तानाथ पाण्डेय

यह हर्ष का, उत्कर्ष का, उल्लास का दिन है।
यह शुद्ध-भाव, भक्ति का, विश्वास का दिन है॥
यह ज्योति का, प्रकाश का, विकास का दिन है।
स्वप्नों के आस-पास का, इतिहास का दिन है॥

इस दिन ही भरत-राम का मधुर-मिलन हुआ।
सुख का, समृद्धि-सिद्धि का शुभागमन हुआ॥
भगवान ने संसार का सब भार उठाया।
पृथ्वी से पाप - ताप - अनाचार उठाया॥
यह रामराज्य ऐसे महापर्व का दिन है।
भारत के लिए अद्वितीय गर्व का दिन है॥

घर-घर का अन्धकार मिटा, दीप जल उठे।
सत्कर्म के प्रकाश-कण, धवल विमल उठे॥
देवों का दुःख दूर हुआ, साधु खिल उठे।
आनन्द में विभोर हो भुवन अखिल उठे॥
यह धर्म के उत्थान का, अभिमान का दिन है।
यह वेद और शास्त्र के सम्मान का दिन है॥

पृथ्वी थी डगमगा रही, आधार मिल गया।
आदर्श के उत्कर्ष को आकार मिल गया॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

महापर्व !

'राजहंस'

●

भारत को फिर से विश्व वन्दनीयता मिली।
कर्तव्य से महीप को महीयता मिली॥
यह विश्व-शान्ति-स्नेह संविधान का दिन है।
पापावसान, पुण्य के बिहान का दिन है॥

ब्राह्मण के शाप से सुरेन्द्र का पतन हुआ।
दैत्यों के दुष्ट-दर्प का दुरागमन हुआ॥
देवों का दुःख विष्णु को नहीं सहन हुआ।
उनके निदेश से समुद्र का मथन हुआ॥
यह कर्म, योग, ज्ञान का, विज्ञान का दिन है।
यह भक्त-भाग्यवान का, भगवान् का दिन है॥

इस दिन की, देशवाशियों ! करो समर्चना।
'श्री' और श्री-निवास की करो उपासना॥
घर-घर में फिर समोद दीपमालिका सजे।
पृथ्वी को अब सदैव के लिए तिमिर तजे॥
यह आदि शक्ति, आदि शक्तिमान का दिन है।
घी के दिये जलाओ, दीप-दान का दिन है॥

तुम रात को प्रभात की प्रभा में दो बदल।
तुम द्वेष को अशेष की दशा में दो बदल॥
फिर ज्योतियाँ जले कि तिमिर डगमगा उठे।
वह ज्योति अब जले कि जगत् जगमगा उठे॥
पर्वों में सबसे भव्य भासमान का दिन है।
यह इस अजेय देश के जयगान का दिन है॥ ●

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'

धर्मज्ञ, विद्यावाचस्पति म० रामनाथ दीक्षित, मयूरवासी

लोकायत अथवा चार्वाकके नामसे प्रसिद्ध मतवादी केवल प्रत्यक्षको ही एकमात्र प्रमाण मानते हैं और अनुमान, शब्द आदिको नहीं स्वीकार करते। वे बार्हस्पत्य मतका सहारा लेते हैं। इस नैसर्गिक अविद्या-विलास प्रपञ्चमें उनका अत्यन्त अभिनिवेश है और वे श्रुति-शास्त्रैक-वेद्य ब्रह्मको स्वीकार नहीं करते। हम इन्हें पहली कक्षामें रखते हैं।

दूसरी कक्षामें हम बुद्धके श्रेष्ठ अनुयायी बुद्धिके रूपमें परमार्थको स्वीकार करनेवाले माध्यमिकोंको रखते हैं। वे इस स्वाभाविक अज्ञानसे कल्पित जगत्में अभिनिवेश-शून्य होते हैं, यह अवश्य ही उनके पूर्व पुण्यका फल है। उनकी विशेषता यह है कि वे अनुमानको भी प्रमाण मानते हैं। आप जानते हैं कि अनुमान कितना लोकोपयोगी है? जो वस्तु लोकव्यवहारमें प्रत्यक्ष सिद्ध नहीं होती, वह भी अनुमानसे सिद्ध हो जाती है। यह दूसरी कक्षामें विराज-मान बौद्ध शब्द-प्रमाणको स्वीकार नहीं करते। इसीसे इन्हें ब्रह्मकी भी सिद्धि नहीं होती।

तीसरी कक्षामें वे लोग आते हैं जो श्रुतिको भी प्रमाणरूपसे स्वीकार करते हैं। सच्ची बात तो यह है कि अनेक ऐसे विषय हैं जो प्रत्यक्ष और अनुमानसे नहीं जाने जा सकते। केवल श्रुतिसे ही सिद्ध होते हैं। वे औपनिषद् ब्रह्मको भी स्वीकार करते हैं परन्तु प्रपञ्चमें अनादिकालीन निरूढ वासनासे अभिनिवेश होनेके कारण द्वैत-मतावलम्बी हो जाते हैं। द्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत आदि अवान्तर भेद द्वैतके ही हैं। ये तीसरी कक्षाके मतवादी श्रुतिके अवान्तर तात्पर्यमें ही सन्तुष्ट हो जाते हैं, परम तात्पर्यका अनुसन्धान नहीं करते।

इनमें केवल कापिल सांख्यवादी और पूर्वमीमांसक यद्यपि श्रुति-प्रामाण्यको स्वीकार करते हैं, तथापि परब्रह्म सत्ताका आच्छादन करते हैं। उनका हार्द है कि ब्रह्म सत्ताको स्वीकार कर लेने पर न कोई कर्म करेगा और न तो तत्त्वविचार, बल्कि यह सोचने लगेगा कि उसकी आराधना और अनुग्रहसे ही सब कुछ हो जायगा, और कुछ करने की क्या आवश्यकता है। इसीसे वे ब्रह्मसत्ताका

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रतिपादन नहीं करते। ब्रह्मसत्ताका अंगीकार न करनेपर भी वस्तुतः वे ब्रह्मसे अभेदके योग्य नित्य प्रत्यगात्माको स्वीकार करते हैं। वे पुनर्जन्ममें जाने योग्य नित्य आत्माका अस्तित्व स्वीकार करते हैं। चार्वाक आदिके समान अनित्य शरीर आदिको ही आत्मा नहीं मानते। अतः श्रुतिकी प्रामाणिकता, देहातिरिक्त आत्माका अस्तित्व तथा परलोककी स्वीकृतिके कारण ये वैदिक होनेपर भी द्वैतवादी ही हैं।

प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाणको तो पशु-पक्षी भी मानते हैं। शब्द-प्रमाण उन दोनोंसे श्रेष्ठ है। श्रुतिके परम तात्पर्य अद्वितीय ब्रह्मका स्वीकार करनेके कारण और अविद्या-विलास मिथ्या प्रपञ्चमें अभिनिवेश न होनेके कारण अद्वैतवादी चौथी कक्षामें हैं। यही सिद्धान्त श्रुतिसम्मत है और भगवान् श्री शंकराचार्यको अभिमत है। 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' इस वेदान्त-सिद्धान्तका उद्घोष किसने नहीं सुना है?

इस वेदान्त-सिद्धान्तके दो अंश हैं—१. ब्रह्मकी परमार्थसत्यता, २. जगत्का मिथ्यात्व। तीसरी कक्षाके सभी ईश्वरवादी ब्रह्मको परमार्थ सत्य मानते हैं इसलिए उन द्वैतवादियोंको भी यह अस्वीकार नहीं है।

दूसरा अंश है—जगत्का मिथ्यात्व। वह दूसरी कक्षाके बौद्ध मतवादी भी स्वीकार करते हैं। अद्वैतसिद्धिकी व्याख्यामें कहा गया है कि ब्रह्मातिरिक्त पदार्थके निर्णयमें शून्यवादियोंके साथ हमारी समानता ही इष्ट है। इसका अर्थ है कि हमारे एक अंशको ईश्वरवादी स्वीकार करते हैं और दूसरे अंशको शून्यवादी। परन्तु दोनोंका सम्मिलित और सुव्यवस्थित रूप हम अद्वैतियोंका ही असाधारण है। इसलिए हम ईश्वरवादी और शून्यवादी—दोनोंसे विलक्षण और दोनोंसे मिलित सिद्धान्तकी घोषणा करते हैं—'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'।

यही कारण है कि वेदान्ती भी जगत्का मिथ्यात्व वैसा ही मानते हैं जैसा बौद्ध, परन्तु उनके मतमें इनका प्रवेश नहीं है; क्योंकि ये अद्वैत ब्रह्मसत्तावादी हैं जो कि बौद्ध माध्यमिकोंको स्वीकार नहीं है। यदि एक अंशकी समतासे ही परमत-प्रवेश हो जाय तो सभी द्वैतवादियोंका चार्वाक मतमें प्रवेश हो जाय; क्योंकि दोनों ही जगत्को सत्य मानते हैं। यदि ब्रह्मसत्ताकी स्वीकृति द्वैतवादियोंको चार्वाक होनेसे बचा सकती है तो वह अद्वैतियोंको बौद्ध होनेसे क्यों नहीं बचा सकती?

वस्तुतः अद्वैतियोंका जगन्मिथ्यात्व भी एक असाधारण सिद्धान्त है: क्योंकि वे अनिर्वचनीय ख्याति मानते हैं। जहाँ माध्यमिक बौद्ध असत् ख्याति स्वीकार करके जगत्का असत्त्व

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्वीकार करते हैं, वहाँ अद्वैती सदसत् विलक्षण अनिर्वचनीय मिथ्यात्व स्वीकार करके बौद्धोंके असत्स्वरूप एकांगी मान्यताको स्वीकार नहीं करते। इसी प्रकार अद्वैतियोंके मतमें ब्रह्मसत्ता भी असाधारण ही है; क्योंकि द्वैतवादियोंके मतमें ब्रह्मके नित्यत्व और व्यापकत्वकी स्वीकृति होनेपर भी अर्थात् देश और कालके परिच्छेदको मान्यता न देने पर भी वस्तुपरिच्छेदको स्वीकार किया गया है। वे सजातीय, विजातीय, स्वगत-भेद-रहित निर्गुण, निर्विशेष ब्रह्मको स्वीकार नहीं करते। 'तदनन्यत्वम्' और 'मृत्तिकेत्येव सत्यम्' की प्राञ्जल, प्रोज्ज्वल एवं निर्मल व्याख्या द्वैतियोंके पास नहीं है।

द्वैतियोंके मतमें जगत्सत्तासे व्यावृत्त ब्रह्मसत्ता नहीं हैं। वे ब्रह्मसत्ता और जगत्सत्ताको एक सदृश मानते हैं। हम अद्वैती सत्य उसको कहते हैं जो भ्रमका अधिष्ठान हो और बाधकी अवधि हो। जैसा कि ब्रह्म-गीताकी व्याख्यामें श्रीमाधवाचार्यने कहा है—'द्वैतके आरोपका अधिष्ठान और उसके बाधकी अवधि होनेके कारण त्रिविध परिच्छेदसे रहित जो अद्वितीय वस्तु है, उसे सत्य ही स्वीकार करना चाहिए; नहीं तो निरधिष्ठान भ्रम और अवधि रहित बाधकी कल्पना करनी पड़ेगी, जो कि सर्वथा अनुभवके विपरीत है। असत् किसी भी प्रकार अधिष्ठान और अवधि नहीं हो सकता; क्योंकि वैसा होना अनुभव और युक्तिके विरुद्ध है।'

लघुचन्द्रिकामें कहा गया है कि 'बाध्यत्वाभावसे उपलक्षित स्वरूपा-त्मक सत्य ब्रह्म ही है, इसका कारण यह है कि आत्मा ही भ्रमका अधिष्ठान है।' अभिप्राय यह है कि भ्रमका अधिष्ठान होना ही सत्यताका हेतु है। विद्वानोंको इस ओर ध्यान देना चाहिए कि अद्वैत मतका यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि प्रत्यक्चैतन्याभिन्न ब्रह्म ही सत्य है और जगत् मिथ्या है।

पहले जिन चार कक्षाओंका वर्णन किया गया है, उनमें-से तीन मतोंका स्वरूप इस प्रकार है—

१—ब्रह्म और जगत् दोनों नहीं है।

२—केवल ब्रह्म नहीं है।

३—केवल ब्रह्म ही है।

'प्रकृतैतावत्त्वम्' वेदान्त सूत्रके भाष्यमें आचार्य शंकरने यह प्रश्न उठाया है कि 'नेति-नेति'के द्वारा क्या रूप और रूपवान् अर्थात् जगत् और ब्रह्म—दोनोंका निषेध किया जाता है अथवा दोनोंमें-से किसी एकका। यदि किसी एकका, तो क्या इसमें ब्रह्मका निषेध करके मूर्तामूर्त जगत्को शेष रक्खा गया है अथवा जगत्का निषेध करके ब्रह्मको शेष रक्खा गया है? आचार्य शंकरने पूर्वोक्त प्रथम दो कक्षाओंका निषेध

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

करके तृतीय कक्षाको ही सिद्धान्त बताया है, अर्थात् केवल ब्रह्म ही परमार्थ सत्य है। इसी सूत्रके भाष्यमें शंकराचार्यके अभिमत अद्वितीय सत्यको पूर्वपक्ष बनाकर श्री कण्ठाचार्य एवं श्री रामानुजाचार्यने उसका खण्डन किया है और ब्रह्म एवं जगत्—दोनोंका परमार्थ-सत्यत्व स्थापित किया है।

इस सम्बन्धमें हमें यह कहना है कि उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, गीता, विष्णुपुराण, भागवत और महाभारत आदि प्रमाणोंका ऊहापोह करनेपर यही सिद्धान्त सिद्ध होता है कि ब्रह्म सत्य और जगत् मिथ्या है। तैत्तिरीय उपनिषद्की आनन्दवल्लीमें ब्रह्मका लक्षण सत्य, ज्ञान और अनन्त कहा गया है। सत्य कहनेका अभिप्राय ही यह है कि जो ब्रह्मसे भिन्न प्रतीत होता है, वह सत्य नहीं है। यदि जगत् भी सत्य हो तो ब्रह्मका लक्षण सत्य नहीं हो सकता; क्योंकि जो लक्षण अपने लक्ष्यसे अतिरिक्तमें भी होता है, वह अतिव्याप्ति दोषसे ग्रस्त होता है। अनन्त लक्षणका भी यही अभिप्राय है कि जो ब्रह्मसे भिन्न प्रतीत होता है वह अन्तवत् अतएव अनित्य है। सत्यत्व और नित्यत्व ये समनियत हैं। अबाधितत्व ही सत्य है। यह लक्षण केवल ब्रह्ममें ही घटित होता है अन्यत्र नहीं। ज्ञान प्रत्यक्चैतन्यरूपता, स्वयंप्रकाशता और अपराधीन सत्ताका बोधक है। इससे सिद्ध होता है कि ज्ञान ही अधिष्ठान है और ज्ञानातिरिक्त अध्यस्त है। दूसरी श्रुति ब्रह्मातिरिक्तको 'आर्त' बताती है। ब्रह्मसूत्रमें भी आकाश अर्थात् अनन्तताको ही ब्रह्मका परिचायक बताया है। भामतीकारने सत्यत्व और नित्यत्व, मिथ्यात्व और अनित्यत्व— इनको समनियत मानकर ही नित्यानित्य वस्तुविवेककी व्याख्या सदसद्विवेकके रूपमें की है।

आनन्दवल्लीमें ही ब्रह्मको असत् जाननेवालेको 'असन्त' और सत् जाननेवालेको 'सन्त' कहा गया है। निश्चय ही श्रुतिने चार्वाक, बौद्ध, आदिके द्वारा स्वीकृत असत् ब्रह्मपक्षका निराकरण करके ब्रह्मसत्य पक्षका समर्थन किया है। श्रुतियोंमें जिस प्रकार अन्यान्य पक्षोंका निषेध प्राप्त होता है, वैसे जगन्मिथ्यात्व पक्षका निषेध कहीं भी नहीं मिलता, प्रत्युत अद्वितीय सत्यका निरूपण करके उसका समर्थन ही प्राप्त होता है। श्रुति उद्घोष करती है कि एक ही सत्य लोकमें सत्य और अनृतके नामसे प्रसिद्ध हुआ है। जो कुछ है सब वही है। वस्तुतः एकमात्र वही सत्य है। भेद केवल विवर्त है।

छान्दोग्य उपनिषद्के छठे अध्यायमें जगत्के कारण अद्वैत ब्रह्मको ही दो बार 'सत्'के नामसे कहा गया है। उसमें 'एव', 'एक' और 'अद्वितीय' पदोंका प्रयोग करके 'सत्'को सजातीय,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विजातीय, स्वगत-भेदसे रहित कहा गया है। उसका तात्पर्य ही यह है कि भेदप्रतीति कालमें अर्थात् इस समय भी ब्रह्मात्मा ज्यों-का-त्यों है। 'तत्त्वमसि'के नौ वारके उपदेश-प्रसंगमें हर वार यह वात कही गयी है कि जो अत्यन्त सूक्ष्मतम है वही सब कुछ है और वही सत्य है और वही तुम हो। मृत्तिका, लोह और कृष्णायस्—इनका उल्लेख करके कहा गया है कि केवल यही सत्य है, दूसरा नहीं। विकार केवल नाम है और कथनमात्र है। ब्रह्मसूत्रमें भी इसका तात्पर्य यही कहा गया है कि ब्रह्मसे अतिरिक्त और कुछ नहीं है। विद्वानोंसे यह वात छिपी नहीं है कि श्रुति, सूत्रकी दृष्टिसे विकार-रूप जगत् मिथ्या है और उसके अभाव से उपलक्षित ब्रह्म ही सत्य है। छान्दोग्य उपनिषद्के सातवें अध्यायमें सत्यकी महिमाका गान करके सत्यकी जिज्ञासा की गयी है—'सत्यं भगवो विजिज्ञासे'। इस प्रश्नके उत्तरमें 'प्राण' आदि प्रपञ्च और उसके पक्ष-पातीको सत्य और सत्यवादी न कहकर ब्रह्म और ब्रह्मवादीको ही सत्य कहा गया है। इससे स्पष्ट और क्या कहा जायगा कि ब्रह्म सत्य और जगत् मिथ्या है।

बृहदारण्यक उपनिषद्के उद्गीथ ब्राह्मणमें यजुर्वेदके इस प्रसिद्ध मन्त्रका उल्लेख किया गया है—'असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मामृतं गमय।' इस मन्त्रमें स्पष्ट ही प्राप्य वस्तुको सत्, ज्योति और अमृत कहा गया है और त्याज्य वस्तुको असत्, तम एवं मृत्यु कहा गया है। इससे अधिक और क्या कहा जा सकता है। यह प्रपञ्च मृत्युरूप है। नश्वर है। इससे वैराग्यकी सिद्धि होती है। यह तमस्, जड़ अथवा अज्ञानरूप है। इससे ज्योति अथवा चित्की असंगता सिद्ध होती है। यह असत्, मिथ्या अथवा प्रतीतिमात्र है। इससे अमृत, चिज्ज्योतिर्का अद्वितीय सद्रूपता सिद्ध होती है। इसी उपनिषद्के अजातशत्रु ब्राह्मणमें मूर्तामूर्त ब्रह्मका निरूपण करते हुए कहा गया है कि ब्रह्म सत्यका भी सत्य है। प्राण सत्य है और ब्रह्म सत्यका भी सत्य है। यहाँ 'प्राण' शब्दका अर्थ है—प्रपञ्च। वह सत्य है, परन्तु ब्रह्म सत्यका भी सत्य है। सत्यका लक्षण है—अबाध्यत्व। जिसके वारेमें कभी, किसीको यह प्रतीति न हो कि यह है ही नहीं, जैसे आत्मा। जिसके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान होनेपर भी निवृत्ति न हो, सद्रूपसे रहे। फिर प्रपञ्च और ब्रह्म—दोनोंको सत्य क्यों कहा गया? इसका अर्थ है कि प्रपञ्च कुछ सीमित काल पर्यन्त अबाध्य है और ब्रह्म सर्वदा अबाध्य है। किञ्चित्काल और पूर्णकाल—यह भी अध्यारोप और अपवादकी दृष्टिसे है। इस प्रकार भेदको स्वीकार किये विना 'सत्यका सत्य है'—इसका

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

WITH

BEST

WISHES

From :

CHAMPAKLAL & BROS. Private Ltd.

Cotton

&

Textile Waste Exporters

•

Phone : 25 - 3215

Gram : **WASTEPAPER**

Codes : A.B.C. 6th Bentley's 2nd

Bentley's Complete and Private

•

Registered Office

45-A, Yusuf Building

49, Veer Nariman RD.,

Fort, **Bombay.**

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तुलसी - मानस - प्रकाशन की उपलब्धियाँ

★

१. संसार का सार (मू. रु. ३) आधुनिक खेलों, वैज्ञानिक साधनों, जीव-जन्तुओं, वनस्पतियों आदि के द्वारा अध्यात्म शिक्षा का विवेचन।

२. ज्ञान साधना (मू. रु. २) लोनावला शिविर में पधारे हुए महापुरुषों द्वारा ज्ञानसाधना के प्रति संकेत।

३. विज्ञान से ज्ञान (मू. रु. १) ऐक्सरे इत्यादि आधुनिक उदाहरणों को लेकर अध्यात्मविद्या नवयुवकों तक पहुँचाने का सफल प्रयास।

४. वेदान्त नवनीत (मू. रु. १–५०) सन् १९६४ के अमृतसर के वेदान्त सम्मेलन में पधारे महात्माओंके प्रवचनों का सार।

५. वेदान्त का सरल बोध (मू. रु. १) वेदान्त के क्लिष्ट ग्रन्थों के सिद्धान्त बड़े ही सरल उदाहरणों में।

६. आध्यात्मिक पिक्टोरियल (हिन्दी व अंग्रेजी) (मू. रु. ३) ज्ञान की गम्भीर बातें सूत्र तथा चित्र द्वारा प्रस्तुत।

७. मुमुक्षु आध्यात्मिक उपन्यास (मू. रु. ५)।

८. मन की शान्ति (पद्य) (मू. रु. ४) अंग्रेजी मूल रचना 'पीस आफ माइण्ड' का अनुवाद।

९. हमारी परम्परा (मू. रु. २) हमारी ऋषि-परम्परा क्या है और उसे जीवन में किस प्रकार उतारा जाय ?

१०. आराम सुख शांति और आनन्द (मू. ५० पैसे)।

११. अपनी ओर इशारा (मू. १ रु.) अपनी ओर आने के सूत्र रूप इशारे।

१२. आध्यात्मिक डायरी (मू. ५ रु.) सचित्र और दार्शनिक सूत्रों से परिपूर्ण दैनंदिनी।

१३. व्यावहारिक जीवन में परमात्मा (मू. ५० पैसे)। और

आध्यात्मिक मासिक
मनन

प्रति मास भारत के उच्चकोटि के विद्वानों के लेख एवं प्रख्यात संत-महात्माओं की अनुभव-पूर्ण वाणी का संकलन।

एक प्रति ४० पैसे

वार्षिक ४) रु. दो वार्षिक ७) रु. तीन वार्षिक १०) रु.
चार वार्षिक १२) रु. और पाँच वार्षिक १५) रु.

प्राप्ति-स्थल :

तुलसी - मानस - प्रकाशन, गुप्ता मिल्स एस्टेट, रे रोड, बम्बई–१०

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उपपादन नहीं किया जा सकता। अवश्य ही सत्यमें उत्कर्ष और अपकर्षका भेद करके यही घोषणा की गयी है कि ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या।

यह बात पहले ही कही जा चुकी है कि सत्य नित्य है और उससे अतिरिक्त सब अनित्य है। नित्यत्व सत्यत्वका ज्ञापक है और अनित्यत्व मिथ्यात्वका। उसी उपनिषद्में सत्यसे अन्यको कई बार 'आर्त' कहा गया है। 'आर्त' अर्थात् मिथ्या। क्योंकि आर्त विनाशी है और विनाशी मिथ्या होता है। ब्रह्मगीतामें आर्तत्वका प्रतिद्वन्द्वी सत्यत्व और आर्तत्वको मिथ्यात्व कहा गया है। भगवत्पाद शंकराचार्यने अपने भाष्यमें कहा है कि आर्त माने विनाशी—अज्ञानार्तिके द्वारा परिगृहीत स्वप्न, माया, मृगतृष्णाका जल, असार।

उसी उपनिषद्के ज्योतिर्ब्राह्मणमें कहा गया है कि ऐसा जो ज्ञान होता है कि द्रष्टा नहीं देख रहा है, वस्तुतः वह देखता हुआ ही न देखता हुआ-सा ज्ञात होता है; क्योंकि वह 'न देखने'को देख रहा है। द्रष्टाकी दृष्टिका लोप कभी नहीं होता; क्योंकि वह अविनाशी है। उसके सिवाय कुछ दूसरा है भी नहीं, जिसको वह अपनेसे पृथक् देखे। जहाँ दूसरा-सा होता है, वहाँ दूसरा दूसरेको देखता है। मैत्रेयी ब्राह्मणमें यह उल्लेख है कि यह आत्मा अविनाशी है। इसका उच्छेद कभी नहीं होता। यह महान्, निर्विशेष और अपार है। जहाँ द्वैत-सा होता है, वहीं द्रष्टा-दृश्यका भाव होता है। जहाँ सब आत्मा ही है, वहाँ किस करणसे किस विषयको देखे। इन सब श्रुतियोंमें प्रत्यक्-चैतन्याभिन्न ब्रह्मतत्त्वको सुषुप्ति, मुक्ति आदि सभी अवस्थाओंमें अविनाशी सत्य कहा गया है और जगत्को सुषुप्ति, मुक्तिमें अविद्यमान एवं जाग्रत्, स्वप्नमें प्रतीयमान कहा गया है। वहाँ भी 'इव' शब्दके द्वारा जगत्को अपरमार्थ एवं कल्पनाप्रसूत कहा गया है। 'इष्टसिद्धि' ग्रन्थके प्रपञ्च-मिथ्यात्व निरूपणमें इन्हीं वचनोंको उद्धृत करके भेदको अविद्या-कल्पित और अभेदको विद्या-सिद्ध बताया गया है। दृश्य-दृष्टिके अभावमें भी आत्म-दृष्टि अविचल रहती है। अविनाशी, स्वयंप्रकाश स्वात्मा दृष्टिका विषय नहीं है।

ऐतरेयोपनिषद्में यह प्रसंग है कि आत्माके तीन आवसथ अर्थात् निवास-स्थान हैं और ये तीनों ही स्वप्न हैं—तस्य त्रय आवसथास्त्रय: स्वप्नाः। इस वाक्यमें तीनों अवस्थाओं अर्थात् जाग्रत्, स्वप्न एवं सुषुप्तिको स्वप्न कहनेका अर्थ ही यह है कि जगत् मिथ्या है। मुण्डकोपनिषद्में 'तदेतत् सत्यम्' इत्यादि वचनोंसे तीन बार ब्रह्मको सत्य कहा गया है। वही अमृत है, वही सामने है, पीछे है, ऊपर है, नीचे है, उसके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है। बार-बार अमृत कहनेका

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अभिप्राय है कि वह अविनाशी है। अविनाशी और सत्य—ये दोनों पर्याय-वाची शब्द हैं। जो सत्य है, वह अवि-नाशी है, जो अविनाशी है, वह सत्य है। यह समनियत है। इस उपनिषद्‌में एक बार कर्मको भी सत्य कहा गया है परन्तु वह सत्यत्वसापेक्ष है और मिथ्यात्वका विरोधी नहीं है। अथवा इस बातको यों समझना चाहिए कि कर्ममें केवल इतनी ही सत्यता है कि उसका फल अवश्य मिलता है परन्तु कर्म स्वभावसे अबाध्य नहीं होता; क्योंकि भोगसे उसका क्षय हो जाता है। इसलिए धर्म, अर्थ आदिका जनक होनेके कारण कर्मको सत्य कहा गया है—ऐसा आचार्य शंकरका अभि-प्राय है।

अब काठकोपनिषद्‌पर एक दृष्टि डालिये। 'आत्मा अजन्मा, नित्य, शाश्वत एवं पुराण है। वह अव्यय, नित्य, अनादि, अनन्त एवं ध्रुवरूपसे अवस्थित है। वह भूत एवं भव्यका ईशान है। वही आज है, वही कल है। वह सनातन अविषय है। वही शुक्र, ब्रह्म और अमृत है। वह नित्यांका भी नित्य है। उसे शुक्र तथा अमृतरूपमें जानना चाहिए। उसे केवल मनसे ही पाना है अर्थात् कहीं जाकर, किसी कालमें, किसी अन्य के रूपमें उसे पाना नहीं है, क्योंकि नानात्व तो है ही नहीं।' ये सब वचन स्पष्ट उद्घोष कर रहे हैं कि ब्रह्म ही सत्य है और जगत् मिथ्या है। विमुक्तकी ही मुक्ति होती है—यह वचन मुक्तिके नित्य सिद्ध होनेका डिण्डिमघोष है और बन्धनको केवल अविद्या-प्रसूत बता रहा है।

ईशावास्य उपनिषद्‌में एकत्वदर्शीके लिए मोह और शोकका अभाव बताया गया है। इसका अर्थ ही है कि अनेकत्व-दर्शन नहीं है। एकत्वदर्शन होनेपर मोहरूप अज्ञानका अभाव हो जाता है। यह स्पष्ट है कि अज्ञान और उसका विलास प्रपञ्च—दोनों ही ज्ञाननिवर्त्य हैं। ज्ञाननिवर्त्य तो मिथ्या ही होता है। 'विद्वान् पुरुष नाम-रूपसे विमुक्त हो जाता है।' इस वाक्यका

गलेका हार

हीरेको उसके निवास-स्थानसे अलग किया गया। रगड़-रगड़कर उसकी मिट्टी छुड़ायी गयी। घिसायी-कटायी हुई। छेद किया गया। उसे एक धागेमें पिरो दिया गया। प्रत्येक क्रियामें हीरा रोया। दुखी हुआ। परन्तु जब उसे प्रियतमके गलेका हार बना दिया गया, तब उसे ज्ञात हुआ कि यह सब तो उज्ज्वल, उत्कृष्ट रूपको अभिव्यक्त करनेकी एक प्रक्रिया थी। क्या बिना कष्ट-संकटके कोई अपने प्रिय-तमके गलेका हार बन सका है?

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अभिप्राय भी यहा है कि नाम-रूप आविद्यक हैं। गीतामें 'नासतो विद्यते भावो' इस श्लोकका भी यही अभिप्राय है; क्योंकि असत्का भी जन्म-मृत्यु नहीं है और सत्का भी मृत्यु-जन्म नहीं है। भावरूप जन्म-मृत्युका उपलक्षक है और अभावरूप मृत्यु-जन्मका उपलक्षक। सत्, असत् दोनोंके ही जन्म-मरण नहीं हैं। इसका अर्थ ही यह है कि जन्म-मरण अनिर्वचनीय है और अपने अधिष्ठानसे पृथक् उनका अस्तित्व नहीं है। श्रीमद्भागवतके मंगल-श्लोकमें 'सत्यं परं धीमहि' और 'यत्र त्रिसर्गो मृषा'का अभिप्राय भी ब्रह्मके सत्यत्व और जगत्के मिथ्यात्वमें ही है।

विष्णुपुराणमें ऐसे अनेक वचन हैं, जैसे—

ज्ञानस्वरूपमत्यन्त-
निर्मलं परमार्थतः।
तदेवार्थस्वरूपेण
भ्रान्तिदर्शनतः स्थितम्॥
निर्गुणस्याप्रमेयस्य
शुद्धस्याप्यमलात्मनः।
कथं सर्गादि कर्तृत्वं
ब्रह्मणोऽभ्युपपद्यते॥

परब्रह्म परमात्मा, ज्ञानस्वरूप एवं अत्यन्त निर्मल है। यही उसका परमार्थ स्वरूप है। भ्रान्ति-दर्शनके कारण वही अर्थके रूपसे भास रहा हैं। निर्गुण, अप्रमेय, शुद्ध तथा माया-मलादि लेश-रहित परमात्मामें भला सृष्टिकर्तृत्व आदिका होना कैसे सम्भव है ?

इसका अभिप्राय यह है कि ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या।

श्री मधुसूदन सरस्वतीने श्रुत्यनुसारी अनुमानोंसे भी प्रपञ्चका मिथ्यात्व सिद्ध किया है। जैसे उनका कहना है कि यदि यह प्रपंच सत् होता तो वाधित न होता और असत् होता तो प्रतीत न होता। इसलिए यह सत् और असत् दोनोंसे विलक्षण होनेके कारण मिथ्या है। अनिर्वचनीय वस्तु अपने अधिष्ठानसे पृथक् नहीं होती। इस युक्तिका आधार है—ऋग्वेदका नासदीय सूक्त—'नासदासीत्' इत्यादि। दूसरी युक्ति है निषेध-प्रतियोगी होनेकी। जो त्रैकालिक निषेधका प्रतियोगी होता है, अपने ही अधिष्ठानमें विद्यमान अपने अत्यन्ताभावका प्रतियोगी होता है, वह मिथ्या होता है। इस युक्तिका आधार है—'नेह नानास्ति किञ्चन।' तीसरी युक्ति है—जो ज्ञान होनेपर निवृत्त हो जाय, वह मिथ्या होता है। इसीको ज्ञाननिवर्त्यत्वरूप मिथ्यात्व कहते हैं। इसका आधारभूत मन्त्र है—'तथा विद्वान् नामरूपाद् विमुक्तः।' इस प्रकारकी युक्तियाँ प्रायः सभी वेदान्तग्रन्थोंमें हैं। उन सबको उद्धृत करना इस लघुकलेवर लेखमें शक्य नहीं है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बात दो टूक

कृष्ण,
आज बात दो टूक सुन !
जगती में अवसर असंख्य हैं—
कहीं भी बन लेना पतित-पावन,
कर लेना चाहे जहाँ पतितोद्धारण,
यदि है तुझे यह प्यारी धुन ।

तुझको अपना कह—
तोड़े हैं, तोड़ता हूँ,
[लोक में प्रतिष्ठित,
ग्रन्थों में वर्णित]
मर्यादा-सेतु सनातन ।

नाम तेरा लेकर—
किया है, करता हूँ
प्रिय जो लगता है,
[उचित अनुचित देखे बिना]
करने को कहता है
जिसको मेरा मन ।

तुझसे उद्धार की अपेक्षा नहीं,
कर्मों के मेरे—
निरीक्षा-परीक्षा नहीं ।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

करने दे—
कर्म के विधायक-निर्णायक को
[पूरी स्वतन्त्रता से]
कार्य अपना।
[निष्ठुर निर्मम हो चाहे जितना निर्णय वह]
कर लूँगा सहज ही मैं सहन,
किये बिना कोई क्रन्दन।

पाप यदि मेरे—
पुण्य न पावें बन,
कल्मष जो मेरे—
[जगती के लक्ष लक्ष शुभ्र सत्कर्मों पर—]
चमक न पावें यदि—
दिव्य ज्योतिर्धन बन.
रहने दे अपना श्रम।

प्रिय तू नित्य,
रहेगा नित्य प्रिय।
न सुलझे तुझसे तो,
रहने दे मेरे तक—
बात दो टूक सुन !!!
मेरी यह उलझन !

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भक्तिमती कवयित्री बनीठनीजी

(श्रीव्रजवल्लभशरण वेदान्ताचार्य पञ्चतीर्थ)

भारत के प्रदेशोंमें राजस्थान सदा सर्वदा भक्ति और वीरतामें प्रसिद्ध रहा है। वहाँकी जनता, नरेश तथा राजमहिलाएँ—सभीमें भगवद्भक्तिकी धारा प्रवाहित रहती आयी है। वैष्णव धर्मके परमाचार्य हंस-सनक-नारदादिके सम्प्रदायके प्रधान प्रचारकर्त्ता जगद्गुरु श्री निम्बार्काचार्य जीकी परम्पराका अखिल भारतीय आचार्यपीठ भी ऐतिहासिक नगर अजमेरके निकटवर्ती तीर्थगुरु श्री पुष्कर क्षेत्र (राजस्थान) में ही है। जोधपुरके मोटा राजा श्री उदयसिंहके पुत्र श्री किशनसिंह जीने उसी आचार्यपीठ (सलेमाबाद)के सन्निकट पूर्वमें १० मीलकी दूरी पर वि० सम्वत् १९६४ में किशनगढ़ राज्यकी संस्थापना की। उन्हींके कुलमें एक राजकुमार राजसिंह जो दिल्लीमें बादशाहके पास रहा करते थे। उस समय बादशाहोंकी भाँति राजा-महाराजा भी जहाँ-तहाँसे लड़कियोंको ले लिया करते थे। राजसिंहजी उस समय राज्यासनपर आसीन नहीं हुए थे। उनकी रानी चतुरकुँवरी भी साथ ही रहती थीं, उन्होंने विक्रम सम्वत् १७५६ में विभिन्न परिवारोंकी ९ लड़कियाँ ली थीं, सभी ५-५-६-६ वर्षकी आयुकी थीं। उन्हींमें एक ये बनीठनीजी थीं। इनका जन्मनाम विष्णुप्रिया था जैसा कि इनकी छत्रीके शिलालेखमें अङ्कित है। किन्तु ये बहुत सुन्दरी और बचपनसे बनठनकर रहा करती थीं, इसीलिए सभी इन्हें बनीठनी कहते थे, अतः इनका यही नाम प्रचलित हो गया था।

किशनगढ़के राजघरानेमें कोई अवैष्णव नहीं था। उसी रीतिके अनुसार बनीठनीजीको भी वृन्दावनस्थ श्री रसिकविहारीजी-मन्दिरके महन्त श्री रसिक-देवजी (वि० १७४१–१७५८) से वैष्णवी दीक्षा दिलायी गयी। उसी वर्ष राज-सिंहजीको एक पुत्र हुआ जिसका नाम कृष्णसिंह या सावन्तसिंह रखा गया। आगे चलकर वही भक्त कवि नागरीदास जीके नामसे प्रसिद्ध हुए। पहली रानीका स्वर्गवास हो जानेपर महाराजा राजसिंहने वि० स० १७७७ में व्रजकुँवरी (बांकावली) जीको व्याहा। बनीठनी जीने इन्हीं रानी जीकी गायिकाओंमें प्रधान पद प्राप्त किया, उनका सम्बन्ध राजकुमार सावन्तसिंह (नागरीदास) जीके

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

साथ किया गया। उसके अनन्तर उपपत्नी (पासवान) के रूपमें ये उनके अन्तःपुरमें रहने लगीं।

नागरीदास जी श्री निम्बार्क सम्प्रदायाचार्य श्री वृन्दावनदेवाचार्य जीके शिष्य थे, वि० स० १८०५ में राजसिंह जीकी मृत्युके पश्चात् वे राज्यासनपर आरूढ़ हुए। किन्तु निरन्तर उनके छोटे भाई बहादुरसिंहने कलह रखा जिससे ऊबकर वे वृन्दावन आ गये। यहाँ अपने गुरुदेवकी नागरीकुञ्जमें निवास करके भजन-साधन करने लगे। बनीठनी जी भी उनकी सेवामें सदा साथ रहा करती थीं। जिस प्रकार नागरीदास जी काव्य-रचना करते थे उसी प्रकार उन्होंने भी रचनाएँ कीं। हिन्दी, व्रजभाषा, पंजाबी और राजस्थानी आदि कई भाषाओंमें आपकी रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। नागरीदास जी द्वारा संकलित पद-मुक्तावलीमें बनीठनी जी की रचनाएँ भी सम्मिलित हैं। वि० स० १९५५ में मुद्रित "नागर समुच्चय" नामक पुस्तकके अन्तमें इनके भी ६१ पद प्रकाशित कर दिये गये थे। ये अपने गुरुदेव एवं उपास्यदेवके नामकी छाप लगाती थीं।

यद्यपि बनीठनी जी विशेष पढ़ी-लिखी नहीं थीं, साधारण अक्षरज्ञान व घरेलू शिक्षा हो इन्हें प्राप्त थी तथापि इनकी रचनाओंमें शब्द-विन्यास और भाव-व्यञ्जना दोनों ही मार्मिक हैं। इन्होंने श्यामा-श्यामकी जन्म-बधाई, फाग, होरी, सुरत, सुरतान्त, नौका-विहार, झूलन, पावसमें युगलमिलन आदि स्तम्भों-पर बहुत-सी रचनाएँ की हैं, व्रजभाषाके आदि वाणीकार श्री श्री भट्टदेव तथा महावाणीकार श्री हरिव्यास देवाचार्यकी भाँति ही नागरीदास जी और बनीठनी दोनोंने एक स्थायी और तीन-तीन तुकोंवाले पद ही अधिकतर रचे हैं। कहीं-कहींपर पदोंके भावको स्पष्ट करनेवाले अलापचारीके दोहे भी पदके आरम्भमें दिये हैं। उपमा, उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति, विरोधाभास आदि अनेकों अलंकार इनकी रचनाओंमें मिलते हैं। यहाँ उनमें-से कुछके उदाहरण दिये जा रहे हैं।

चन्द्रमाके उदय होनेपर कुमुदकली खिलती है; यह स्वाभाविक है। अतएव कुमुदकलीको चन्द्रोदय अपेक्षित है; किन्तु बनीठनी जीने इसके विपरीत यह सिद्ध किया है कि चन्द्ररूपी श्यामको अपनी प्रफुल्लतामें कुमुदकली अपेक्षित है। देखिए उनका यह पद—

बधावणों हे आली आज रली,
भई भीर वृषभानु भवनमें कीरती केलि फली।
जुवति वृन्द घर घर मैं मंगल गावत आत चली,
रसिक बिहारी चन्द हेतु जनु प्रगटी कुमुद कली।

होरीके खेलमें ही प्रिया-प्रियतमके ब्याहका जो रूपक होरी सम्बन्धी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रचनाओंमें बनीठनी जीने प्रस्तुत किया है, वह बड़ा ही सरस और मनोरम है। फागुन मासमें गुलाल उड़नेसे चारों ओर धुंध छा गयी, वही व्याहका मण्डप तन गया है। शीशपर लगे हुए फूलोंका सेहरा (मौर) वन गया है, रंगमगे-वस्त्र ही व्याहकी रंग-विरंगो पोशाकें हैं और दोनोंकी मन्द-मन्द गतिसे चलन ही भाँवर पड़ रही हैं। भींजे हुए लाल और केशरिया वस्त्र धारण किये हुए दोनों परस्पर एक दूसरेका हाथ पकड़-पकड़कर होरी खेल रहे हैं। यह गठ-जोरा दूलह श्री रसिकविहारी और दुलहिन श्री नवलकिशोरीजी दोनों बनाबनीका व्याह हो रहा है—

उडि गुलाल धूंधरि भई, तन रह्यो लाल वितान।
चौरी चारु निकुञ्जमें, व्याह फाग सुखदान॥
फूलनके सिर सेहरा, फाग रगमगे वेश।
भाँवर हीं में चलत दोउ, लै गति सुलभ सुदेश॥
भीजे केशर रंगमें, लगे अरुन अरु पीत।
डोलैं चांचर चौकमें, गहि वहियाँ दोउ मीत॥
रच्यौ रंगीली रैंनमें होरीके विच व्याह।
बनी विहारनि सरसनी, रसिक विहारी नाह॥

इन्हीं दोहोंका भावव्यञ्जक पद भी द्रष्टव्य है—

कुञ्ज महलमें आजु रंग होरी हो।
फाग खेल में बनाबनीकी है रही पट गठ जोरी हो।
मुदित ह्वै नारी गुलाल उड़ावैं, गावै गारो दुहुँ ओरी हो॥
दूलह रसिक बिहारी सुन्दर दुलहिन नवल किशोरी हो।

होरीमें ऐसे अटपटे खेल खेलना अच्छा नहीं, और पास रहनेवाले गाँवके सभी नर-नारी इन्हें देख-देखकर अवज्ञा करेंगे, यह प्रेम की भावना केवल अपने चित्तमें ही रखनी चाहिए, अपने प्राणप्रिय प्रियतमको वे कितने सुन्दर ढंगसे प्रेम-पूर्वक समझाती हैं—

मन ही में यह रहणद्यो इसा अटपटा खेल।
रंग लाग्यो छिप सी नहीं मति जी मति पिय छैल॥
चुगल चवाई गाँव यो वुरा लोग अण वैल।
कांई खेलौ खेल ये मति जी मति पिय छैल॥

रातके उनीदे श्यामसुन्दरकी प्रातःकाल कैसी शोभा दिखायी दे रही है बनीठनी जीने उसका जो वर्णन किया है वह बड़ा ही अनोखा है। मदनके मदसे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मतवारे श्यामसुन्दरके नयनोंकी पलकें मुदी हुई हैं, उनकी अलकोंमें श्री किशोरी जीका अनवट (चरण-भूषण) उलझा हुआ है। किन्तु उसका उन्हें कुछ भी भाष नहीं है थोड़ी-थोड़ी अलसायी हुई मुसकानसे ये उन्हें कितने प्रिय लग रहे हैं, उसे उनका हृदय ही जान सकता है। वे कहती हैं—

हो कान्हजी ! राता रा उनीन्दा रँग राता।
निश रैं ध्यान प मूँदी पलकैं आवैं मदन मद माता॥
अलक माँहि प्यारी रो अणवट ल्याया थे उलझाता।
रसिक बिहारी लागो छो प्यारा मुसक्याता अलसाता॥

श्यामसुन्दर प्राणप्रीतमका वियोग उनसे सहा नहीं जाता, वे रात दिन उन्हीं-के ध्यानमें निमग्न रहकर उन्हें आमन्त्रित करती हैं, आइये प्यारे, आइये इन गलियोंमें। मैंने इन गलियोंको अपने नेत्रोंके जलसे धो-धोकर स्वच्छ बना दिया है, आप धीरे-धीरे यहाँ अपने चरणकमल रखिये। तृषित व्याकुल चकोरके समान मेरे इन नयनोंको चन्द्रके समान अपने मुखकमलके दर्शन दीजिये। आप दयालु हैं, तो दया ही करिये। ऐसो निठुरता मत कीजिये—

प्यारे प इनि गलियोंमें आव।
नयननि जल सौं धोय सँवारी अछन अछन धरि पाँव॥
व्याकुल तृषित चकोर दृगनिको वदन चन्द दरसाव।
रसिक विहारी लाल सलोंने जिन करि निठुर स्वभाव॥

प्रेमी भक्तोंको अपने प्रियतमकी लगनमें मस्त रहना चाहिए; चाहे कोई कितनी अवज्ञा क्यों न करे, कुछ परवाह नहीं। इन्हें स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया जाय—मैंने अपना मन देकरके अपने मनभावनको खरीदा है, बातें बनाने-वालोंको जलन क्यों है। वे चाहे जितना अपना मुँह विगाड़ें, विधाताने मेरे भाग्यमें लिखा था तभी तो मुझे ऐसा प्राणप्रिय प्रियतम मिला है।

मैं अपनो मन भावन लीन्हों। इन लोगन को कहा कीन्हों।
मन दै मोल लियो री सजनी, रतन अमोलक,
नन्द दुलारौ नवल लाल रंग भीनौं॥
कहा भयो सबके मुख मोरे मैं पायो अब पीय प्रवीनौं।
रसिक विहारी प्यारो प्रीतम सिर विधना लिख दीनौं॥

राजस्थानी तो उनकी मातृभाषा ही थी। पंजावी भाषामें भी उन्होंने बड़े सुन्दर भाव व्यक्त किये हैं, श्यामके नयनोंको धनुष-बाणकी उपमा देकर वे कहती हैं—तीक्ष्ण वाण रूप इन कटाक्षोंसे न जाने कितने मारे जा चुके हैं और न जाने

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कितने घायल हो-होकर तड़फड़ा रहे हैं, फिर भी ये नहीं रुकते, प्रहार कर ही रहे हैं। श्याम तुम्हारे ये नेत्र बड़े खूनी हैं—

तीखे नैंन कह्लाई सैंडे पल पल खून करन्दे।
भौंहैं तो कमान बनो हैं पलकें तीर परन्दे॥
कित्ते घायल परे कराहै दिल नहिं धीर धरन्दे।
रसिक विहारी नित वार करन्दे टारे नहीं टरन्दे॥

एक ही परब्रह्म परमात्मा श्री राधाकृष्ण-युगल-रूप में सुशोभित हैं, सभी प्रकारसे दोनोंमें अनुरूपता है, एक दूसरेसे किसी भी प्रकार न्यून नहीं हैं। "एको ज्योतिरभूद्द्वेधा राधामाधव-रूपकम्" वनीठनी जी इसी सिद्धान्तवाले सम्प्रदायकी अनुगामिनी हैं। श्री किशोरी जी श्यामसुन्दरकी आत्मा हैं और ये उनके प्राण-धन। दोनों परस्पर एक दूसरेको महत्ता देते हैं। इसी भावसे श्यामसुन्दर प्रियाजीसे कहते हैं—किशोरी जू आपने मुझे उपकार करके खरीद लिया है। आपकी कृपासे ही मैंने कामदेवको जीता है, मदन-सेना जब मुझपर उमड़ी तभी आपने अधरामृत पान कराकर मुझे जीवन-दान दिया है। आपकी यह हार्दिक दयालुता धन्य है—इस आशयका कितना सुन्दर वर्णन वनीठनीके इस पदमें है देखिये—

प्यारी जू तैं मोहि मोल लियो।
तेरी कृपा मदन दल जीत्यो तेरो जिवायो जियो।
उमड़ी सैंन महा मन-मथ की तैं अधरामृत दियो॥
रसिक बिहारी कहत दीन ह्वै धनि श्यामा को हियो॥

इस सम्प्रदायमें सखी-सहचरी भावसे उपासना की जाती है, कान्त भाव प्रायः नहीं अपनाया गया है, प्रिया-प्रियतमके सुखमें ही सखी सहचरियाँ अपनेको सुखी और कृतकृत्य मानती हैं, इसी उपासना-सिद्धान्तका उन्होंने बड़ी सावधानीसे वर्णन एक पदमें किया है—

वनि दुकूल वैठे परजंक।
कमल नैंन अंग अंग छबि निरखत प्यारी भरैं जु अङ्क।
धन्य धन्य पिय मानि अपनपो ज्यों निधि पाये रंक॥
श्रीरसिक बिहारी यह सुख विलसत तहाँ निकट निरशंक।

प्रातःकाल निद्रात्यागसे लेकर रात्रिशयनपर्यन्त युगलकिशोरकी अष्टयाम सेवा ही सर्वश्रेष्ठ और सुलभ साधना है। अनुरागी भक्त उसीका चिन्तन करते हैं और भक्त कवि उसीका वर्णन। बनीठनी जी भी ऐसी ही अनुरागी भक्त कवियत्री थीं। उनके रचे हुए निम्नांकित शयनपदका सभी रसिकजन गान करते हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कुञ्ज पधारो रंग भरी रैंन।
रंग भरी दुलहनि रंग भरे पिय श्यामसुन्दर सुख दैंन॥
रंग भरी सैंनीय रची जहाँ रंग भरयो उमडय मैंन।
रसिक विहारी पिय प्यारी मिलि दोऊ करो रंग सुख सैंन॥

वास्तवमें वनीठनीजी और नागरीदासजी दोनों ही प्रभुके नित्य पार्षद थे। वे लोकहितके लिए साथ ही यहाँ आये थे, साथ ही रहे, और साथ-साथ ही आदर्श रखकर अन्तर्ध्यान हुए। भाद्रपद शुक्ला ५ वि० स० १८२१ में नागरीदासजीका लीला-प्रवेश हुआ। उनके थोड़े ही दिनों बाद वनीठनीजीने भी पाञ्चभौतिक शरीरको त्यागकर श्री युगलकिशोर कुञ्जविहारीकी नित्य सन्निधि प्राप्त की। दोनों ही समाधियाँ (छत्रियाँ) भी वृन्दावनस्थ श्रीनागरीदासजीके घेरामें अत्यन्त सन्निकट ही बनी हुई हैं। वनीठनी जीको छत्रीमें निर्माण काल (वि० स० १८२२ आषाढ शुक्ला १५) का उल्लेख है। उसके साथ ही उनके परिचायक उन्हींके रचे निम्नांकित ३ दोहे उत्कीर्ण किये हुए हैं—

श्री बिहारिनि विहारी जी ललितादिक हरिदास।
नर हरि रसिकनकी कृपा दियो वृन्दावन वास॥
श्री रसिक दास गुरुकी कृपा लहमा भरि सत्संग।
विष्णु हि वृन्दावन मिल्यो भक्त विहार अनंग॥
रसिक विहारी सामरी ब्रजनागर सुर काज।
इन पद पंकज मधुकरी, सेवत विष्णु समाज॥

'श्री सर्वेश्वर'से साभार

●●●

अपनी ओर देखो

किसीने पूछा—'किस ओर मुख करके भगवान्‌का भजन करूँ?

महात्मा—जिस ओर मुख करनेसे भगवान् पीछे न पड़ें।

प्रश्न—मैं पूर्व दिशामें मुख करता हूँ तो पश्चिमके और पश्चिम दिशामें मुख करता हूँ तो पूर्वके भगवान् पीछे पड़ जाते हैं। फिर क्या करना चाहिए?

उत्तर—अपनी ओर देखो। और भी उपाय है। भगवान्‌को इतना छोटा कर लो कि वे तुम्हारे हृदयमें अँट जायँ या तो तुम अपनेको इतना बड़ा कर लो कि उसमें पूर्व-पश्चिम, अन्तर-बाह्य आदि दिशाओंका भेद ही बाधित हो जाय। ●

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्रीरामानन्दाचार्यके

श्री रामानन्दाचार्यका जन्म तेरहवीं शताब्दीमें हुआ। तीर्थराज प्रयागमें पं० पुण्यसदन शर्मा आपके पिता और श्री सुशीला देवी आपकी माता थीं। आपमें अलौकिक सुन्दरता थी। बाल्यकाल हीसे आपमें अनेकों चमत्कार देखनेमें आये थे। १२ इन्होंने वर्षकी आयुमें ही अनेक शास्त्रोंका अध्ययन कर लिया था। योगवलसे अदृश्य हो गये और फिर यज्ञमें प्रकट हुए थे। किशोरावस्थामें ही संन्यास धारणकर काशीमें गंगातटपर गुफामें बैठ तप करने लगे। कभी शंख बजाते तो उसकी ध्वनिसे रोगी अच्छे हो जाते तथा लोगोंकी समाधि लग जाती थी। श्री कबीरदास जीको आकाशवाणी हुई कि श्री रामानन्द जीसे दीक्षा लो। कवीरदास जीको आपने मुसलमानसे हिन्दू बना लिया और समस्त सिद्धियाँ प्रदान कीं। ऐसे ही श्री पीपा जीको देवीने दर्शन देकर श्री रामानन्दाचार्य जीके पास भेजा था मुक्तिके लिए। आपके सहस्रों सिद्ध शिष्य हुए हैं। आपने ही कबीर और रैदासजीको आज्ञा देकर हिन्दीमें ग्रन्थ रचनेकी परिपाटी चलायी।

'काशी नागरी प्रचारिणी-सभा' द्वारा प्रकाशित एक ग्रन्थ जिसका नाम (रामानन्दकी हिन्दी रचनाएँ) है उसमें श्रीरामानन्दाचार्यको ही 'हिन्दीका प्रवर्तक'—माना है। उसकी भूमिकाका कुछ अंश नमूनेके लिए यहाँ ज्योंका-त्यों दिया जा रहा है—

'युगप्रवर्त्तक रामानन्द'

'युग-युगसे जमे हुए अन्धकारकी दृढ़ प्राचीरें आत्माको बंदी बनाये रहती हैं। लौह शृङ्खलाएँ अन्ध-विश्वासमें बाँधे रहती हैं। अन्यायके कारागारमें व्यक्तिका स्वातन्त्र्य यंत्रणाकी असह्यतासे कराहता रहता है। अवसादभरा जगत् परित्राणकी आशाको सर्वदाके लिए त्याग देता है। जान पड़ता है कि हँसता खेलता सरलताका दिन कभी लौटेगा ही नहीं। तब—सहसा एक दिव्य विभूति धरातलपर उतर आती है। और तत्काल दुर्भेद्य प्राचीरें खड़-खड़ाकर ढह पड़ती हैं। लौह जंजीरें झनझनाकर टूट गिरती हैं, व्यक्तियोंकी यंत्रणाएँ उड़ जाती हैं। स्वातन्त्र्यका सूर्य उदय होकर उसे तपाये सोनेकी आभासे मढ़ देता है। मध्ययुगके धार्मिक इतिहासमें वे विभूति थे—श्रीरामानन्द।'

पहले संस्कृतमें ही ग्रन्थ रचनेकी परम्परा थी। उसे आपने बदल दिया। आपने यवनोंको हिन्दू बनाकर तथा हिन्दी काव्य-ग्रन्थोंकी रचना कराकर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उदार सिद्धान्त

हिन्दुत्वका प्रकाश प्रज्ज्वलित किया। कवीरके ग्रन्थ, रैदासरामायण, भक्त-माल, तुलसीकृत रामायण, अग्रदास ग्रन्थावली आदि श्री रामानन्दके उदार सिद्धान्तोंके स्वरूप हैं। श्री तुलसीदास जी और श्री नाथजी श्री रामानन्दाचार्यके ही प्रशिष्योंमें हुए हैं। तुलसीकृत रामायणने श्री रामानन्दके सिद्धान्तोंका सारे विश्वमें प्रचार कर दिया है।

दलितोद्धार !

वि० सम्वत् १३८१में जूना खाँने अयोध्यापर हमला किया था। उसके १ वर्प वाद अपने पिताको धोखेसे मारकर मुहम्मद तुगलक गद्दीपर वैठा। वह वड़ा क्रूर वादशाह था। उसने आर्डर दिया कि हिन्दुओंको जवरन मुसलमान वनाओ। उसके अत्याचारसे लाखों हिन्दू मार डाले गये और लाखों जवरन यवन वना लिये गये। 'प्रसंग पारिजात' नामक एक ग्रन्थ प्राकृत भाषामें प्राप्त हुआ है, वह १५०५ सम्वत्का लिखा हुआ है। उसमें वर्णन है कि—'श्री रामा-नन्दाचार्य जीके पास काशीमें एक दिन अयोध्याके राजाका भतीजा गर्जसिंह नामक सूर्यवंशी राजपूत आया और रोते-रोते अपनी दुर्दशा कहने लगा कि—'हे प्रभो ! मैं आपका यश सुनकर आपकी शरणमें आया हूँ। मैं अयोध्याके राजा हरिसिंहका भतीजा हूँ। वैशाख शु० दशमी शनिवार १३८१को जूना खाँ तुगलकने अयोध्यापर आक्रमण किया। हरिसिंह राज्य छोड़ भागकर चले गये। दुष्ट तुगलकने पीछे वीसों हजार राजपूतोंको जवरन मुसलमान वनाया। तवसे ५० वर्ष हो चुके हैं। धर्मभ्रष्टोंकी संख्या वढ़ती ही गयी। हम सव लाखों व्यक्ति पण्डितोंके पास प्रायश्चित्तके लिए गये; परन्तु उन्होंने शुद्ध करनेसे इन्कार कर दिया। ऐसा कोई रोग नहीं जिसकी दवा न हो और ऐसा कोई पाप नहीं जिसका कि प्रायश्चित्त न हो। हे प्रभो! आपके अद्भुत चमत्कार सुनकर हम आये हैं। हमारा आप किसी उपायसे उद्धार करें। फिर हमें हिन्दू वना लें। हम अवध-वासियोंकी रक्षा करनेमें आप समर्थ हैं।' 'ऐसा विलाप कर वह गिर पड़ा।' उसकी दशा सुन दयालु श्री रामानन्दाचार्य जीने सान्त्वना दी और कहा—"आजसे तीसवें दिन सभी धर्मभ्रष्टोंको एकत्रित कर तुम

स्वामी श्रीजयरामदेवजी

अयोध्यामें ले आओ। उस दिन सबकी शुद्धि करनेको मैं आऊँगा।"

आचार्यकी आज्ञा पाकर गर्जसिंह

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आनन्दके साथ अयोध्या गया और दूर-दूरसे धर्मभ्रष्टोंको एकत्रित करने लगा। यह समाचार सुन सभी प्रसन्न हो रहे थे। लाखों धर्मभ्रष्ट सरयूकिनारे आ गये। ठीक समय-पर आचार्य श्री रामानन्द जी अयोध्या पहुँचे। सबको सरयूमें स्नान करनेकी आज्ञा दी। स्नान करके वे लाखों धर्मभ्रष्ट सामने खड़े हो गये। आपने श्री राममंत्र-ध्वनियुक्त शंख वजाकर सवको शुद्ध किया। सवका दिव्य-संस्कार हो गया। सवमें हिन्दुत्वका तेज आ गया। चोटी, तिलक, माला सबको प्राप्त हुई। सवने श्री रामानन्दाचार्य भगवान्‌की जय वोलकर आकाश गुँजा दिया। यह शुद्धिसंस्कार वि० स० १४३२में हुआ। साथ ही उन दिनों कुछ मुसलमान सिद्ध फकीर भी थे। जिन्होंने भूतप्रेतोंकी सिद्धि कर ली थी। वे वड़े-वड़े चमत्कार दिखाते थे। वादशाह उन फकीरोंसे इस्लामधर्मके फैलाने में मदद लेते थे। फकीरोंने ऐसे यन्त्र बनाये थे जो तीर्थोंमें ऊपर टाँग दिये थे—उनके नीचेसे जो हिन्दू निकलता वही मुसलमान वन जाता। उन जादूके यंत्रोंके प्रभावसे उसके सव मुसलमानी संस्कार हो जाते थे और वह स्वयम् अपनेको मुसलमान कहने लग जाता था। उन यंत्रोंको श्री रामानन्दाचार्यजीने अपने योगवलसे नष्ट कर दिया। और उन यंत्रोंके स्थानोंपर अपने यन्त्रोंको टाँग दिया जिनके नीचे निकलते ही मुसलमान भी हिन्दू वन जाते थे। उनकी चोटी निकल आती। भविष्यपुराणमें भी श्री रामानन्दाचार्यकी महिमाका वर्णन है। वहाँ भी आया है कि—

म्लेच्छास्ते वैष्णवाश्चासन्
रामानन्दप्रभावतः ।
संयोगिनश्च ते ज्ञेया
अयोध्यायां वभूविरे ॥
कण्ठे च तुलसीमाला
जिह्वा राममयी कृता ।
भाले तिलक-चिन्हं च
श्वेतरक्तं तदाऽभवत् ॥

—'भविष्यपुराण—चतुर्थखण्ड'

यवन वादशाहोंने उन दिनों ऐसे-ऐसे अत्याचार किये हैं कि—उनका स्मरणकर हृदय काँप उठता है। उन वर्वर वादशाहोंने हिन्दुओंको मिटानेका संकल्प किया था। हिन्दुओंको मार डालना या यवन बना लेना, हिन्दुओंके प्राचीन चिह्न मन्दिर और तीर्थोंको नष्ट करना। स्त्रियोंको जवरन छीन लेना इनका मुख्य ध्येय था। फल-स्वरूप देशमें थोड़े हिन्दू रह गये थे। इन अत्याचारोंसे पीड़ित देश-देशके प्रमुख हिन्दुओंकी विशाल सभा एकवार काशीमें हुई। 'प्रसंग पारिजात' नामक ग्रन्थमें इस घटनाका विस्तारसे वर्णन है कि—

'सवने उस सभामें अपने-अपने देशोंकी दुर्दशा सुनायी। और कहा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कि—मुसलमान बड़ा अत्याचार करते हैं। कहाँ जायें क्या करें? हिन्दूधर्मका रक्षक अब कोई नहीं है। ऐसे तो हिन्दुओंका नाम भी आगे नहीं रह जायगा। हमारे जीनेकी अब आशा नहीं रही। इतनेमें किसीने कहा—'काशीमें श्री रामानन्दाचार्य बड़े सिद्ध पुरुष हैं। उन्होंने बड़े-बड़े अद्भुत कार्य किये हैं। चलो सब मिलकर उनसे प्रार्थना करें।' यह सुन सब आचार्यके पास आये। अपने-अपने स्थानोंकी विपत्ति सुना दी। श्री रामानन्दाचार्य-उनकी दशा सुनकर करुणासे विह्वल हो उठे और यवनोंको दण्ड देनेका निश्चय किया। उसी समय आपने तपोबलसे सारे देशके मुसलमानोंकी नमाज बन्द कर दी। जब नमाजके लिए कोई मस्जिदमें जाता तो उसको लकवा मार जाता। जड़वत् हो जाता। मुल्ला बाँग देने जाता तो उसका गला रुँध जाता। वह बोल नहीं पाता। सारे देशमें जब यह दशा हो गयी तो बादशाह और दीवान सभी घबड़ाये। सबने एकत्रित होकर विचार किया। मुल्ला, मोमिन, पीर, फकीरोंकी सभा लगी। सब लज्जित हो रहे थे। कोई कुछ बता नहीं रहा था कि क्यों ऐसा हो रहा है?

तब बादशाहने कड़ककर कहा—'तुम लोग सब बड़े काबिल और सिद्ध बनते थे, अब क्यों नहीं इसका रहस्य बताते हो। तुम सब मुल्ला और फकीरोंको फाँसीकी सजा दी जायगी, अगर नमाज न खुली तो।' तब तकी और इब्ननूर आदिने डरते-डरते बताया कि—'हम लोगोंकी ताकत इसमें काम नहीं कर रही है। यह किसी बहुत बड़ी ईश्वरीय ताकतवाले महापुरुषका कार्य है। हो सकता है—यह कबीरका काम हो। क्योंकि वह पहले मुसलमान था अब सुना है—किसी हिन्दू साधुका चेला बनकर वह पक्का हिन्दू बन गया है। हो न हो यह उसीकी करामात है। इसलिए सब मिलकर चलें और उसकी खुशामद करके उसे राजी कर लें, तो निश्चय ही काम बन जायगा।'

दिल्लीके बादशाहने इसपर विचार करके अपने दीवान और सिपाहियोंके साथ बहुत सी भेंट लेकर उन सब मुल्ला और फकीरोंको काशी भेजा। वे सब काशी आये। श्री कबीरजीकी बड़ी सेवा करके अपना दुःख सुनाया और नमाज खोलनेके लिए प्रार्थना की। श्री कबीरजीने दुखी होकर कहा—'आप लोगोंने हिन्दुओंको बहुत सताया है। दूसरोंका धर्म मिटानेको आप लोग बड़े-बड़े उपाय करते हैं और जब अपने धर्मपर विपत्ति आयी तो रोते हैं। हिन्दुओंके मन्दिर तोड़ना, पूजा-पाठ न करने देना, मार डालना, पतिव्रताओंके साथ पाप करना, यह सब क्या है? आप लोगोंने पानीमें आग लगायी है, उसे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कैसे बुझाइयेगा ? ईश्वर तो सबका एक है।' जब कबीरदासजीने ऐसा कहा-तो सब उदास हो गये और आँसू बहाने लगे। बोले—'यदि नमाज न खुली तो बादशाह हमें फाँसीकी सजा देगा। आप हमारे प्राण बचानेका कोई उपाय बताइये।'

श्री कबीरदासजीने कहा—'आप लोग हमारे गुरुजीके पास जाइये। वे बड़े दयालु हैं। वे साक्षात् ईश्वर हैं। वे जैसी आज्ञा दें वैसा करना। आपका काम बन जायगा।' वे सब श्री रामानन्दाचार्यजीके पास आये और रो-रोकर खूब बना-बनाकर प्रार्थना की। श्री रामानन्दाचार्यजीने आज्ञा की कि—दुनियाँमें जितने भी हिन्दू-मुसलमान हैं सबका ईश्वर एक है। वह सबमें व्यापक है और सब कुछ देखता सुनता है। तुम लोग मन-माने अत्याचार हिन्दुओंपर करना छोड़ दो। क्योंकि ईश्वर किसीका पक्षपात नहीं करता। तुम किसीको दुःख दोगे तो ईश्वर तुमको दण्ड देगा। खुदा तुम्हारा ही नहीं, वह तो सूर्यके समान सबको ही प्रकाश देनेवाला है। उसी ईश्वरकी पूजा सभी करते हैं। हिन्दू राम कहते हैं तुम अल्ला कहते हो। सिर्फ पूजा और नाममें फर्क देखकर तुम लोग लड़ते मरते हो। जैसे शरीरके लिए स्नान, भोजन, वस्त्र आवश्यक हैं वैसे ही मन बुद्धिकी शुद्धि के लिए ईश्वरकी उपासना आवश्यक है।' तुम लोगोंने जो हिन्दुओंपर अत्याचार किया है उसका फल भोगना पड़ेगा। अब अगर अपना कल्याण चाहो तो हमारी बारह शर्तें मानो। तब तुम्हारी नमाज खोल दूँगा।'

यह उपदेश सुन सबने कहा—'आप जो आज्ञा दें, हम मानेंगे।' श्री रामानन्दाचार्यने कहा—'मन्दिरोंको न तोड़ा जाय और न मन्दिरोंको बनानेसे रोका जाय। हिन्दुओंको धर्मभ्रष्ट न किया जाय। मस्जिदके आगे जाते हुए दूल्हाको पालकीसे न उतारा जाय। गोहत्या बिल्कुल बन्द कर दो जाय। संस्कृत पढ़ना न रोका जाय। धमग्रन्थ न जलाये जायँ। मुहर्रमके समय हिन्दुओंका त्योहार न रोकें। स्त्रियोंका सतीत्व नष्ट न किया जाय। कथामें, मन्दिरोंमें शंख, घण्टा आदि बजानेसे न रोका जाय। कुंभ आदि मेलोंमें यात्रियोंपर टैक्स न लगाया जाय। मुस्लिम फकीर हिन्दुओंको न बहकावें।' बस, इन शर्तोंको आप मानकर बादशाह से दस्तखत करा लावें तो नमाज खोल दी जायगी। और दस्तखत करने केबाद फिर यदि इन शर्तोंको न माना गया तो थोड़े दिनोंमें मुसलमानी बादशाहत नष्ट हो जायगी।'

इन शर्तोंको लिखकर सब दिल्ली गये और बादशाहसे दस्तखत करा लाये। उसी दिन आचार्यने नमाज खोल दी। सब मुसलमान सुखी हो गये। सारे भारतवर्षमें नगर-नगर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"ॐ भूरसि भूमिरस्यदितिरसि
विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री।
पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृंह पृथिवीं मा हिंसीः ॥"

—यजुर्वेद २२।२२

"हे बड़ी माँ! तुम सम्पूर्ण सुखोंकी दाता हो। तुम्हारा स्वरूप विशाल है। तुम स्वयं देवता हो और देवताओंकी माता हो। तुम सम्पूर्ण विश्वको अपने उदरमें धारण करती हो और उसका भरण-पोषण करती हो। सब प्राणी तुम्हारी गोदमें रहकर तुम्हारा ही दूध पीते हैं। तुम अपनी विशालताको और बढ़ाओ, अपनेको और दृढ़ करो और अपने-आपको कभी क्षीण मत करो।"

फोन—39736

तार—RAIBANSI

दि चिरीमिरी कॉलिअरी कम्पनी
प्राइवेट लिमिटेड

१८।२२ शेखमेमन स्ट्रीट

बम्बई—२

की

शुभकामनाएँ

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

With best compliments from :--

Gram : "CACTINA" (KB)

ATCO PHARMA LABORATORIES

Pharmaceutical Manufacturers

Labs : *Phone* : 376154
110, Reay Road
BOMBAY - 33.

Office : *Phone* : 310805
133, Princess Street,
BOMBAY - 2.

Prestige Products :

OXYMYCIN INJ. & CAPSULES
A R.C. TABS.
CALBON INJ. & LIQUID
TETKIDE CAPS, SYRUP & DROPS.
HISTALON EXP.
BRANOMALT
ATCOBEX-12
(Comb pack) INJ

GRAMS : CACTINA
PHONE : 310805

ASIAN TRADING COMPANY

Laboratory Chemical and Pharmaceuticals
135, Princess Street.,
BOMBAY - 2.

प्रेस—

छपाई-सम्बन्धी

आपका प्रत्येक कार्य

लेटर पैड, कार्ड, कैशमेमो, आर्डरबुक विज्ञापन-पम्फलेट, सूचीपत्र तथा पत्र-पत्रिकाएँ और पुस्तकों के लिए

सुरुचिपूर्ण मुद्रण ★ सुसंगत सम्पादन

पत्र-व्यवहारका पता—
व्यवस्थापक
आनन्दकानन प्रेस
सी०के० ३६/२० ढुण्ढिराज, वाराणसी-१

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ग्राम-ग्राम ढिंढोरा पीटकर ये शर्तें माननेके लिए सभी यवनोंको वादशाह-का सन्देश सुनाया गया। तवसे श्री-रामानन्दाचार्यके भयसे सव उपद्रव वन्द हो गये। हिन्दू मुसलमान परस्पर प्रेम वढ़ाकर रहने लगे। जवतक पृथ्वीपर श्रीरामानन्दाचार्य रहे तवतक रामराज्यका-सा आनन्दमङ्गल घर-घर होने लगा था। श्रीरामानन्दजीकी आयु वहुत लम्वी हुई है। श्रीनाथजीने भक्तमालमें लिखा है :

रामानन्द रघुनाथ ज्यों,
द्वितीय सेतु जगतरण कियो।
बहुत काल वपु धारिकै,
प्रणत जननको पार दियो॥

'वहुत काल वपु धारिकै' इस वचनसे वहुत लम्वो आयु वतायी है। ऐसा अन्य किसी भक्त या आचार्यके लिए नहीं लिखा। इससे पता लगता है— दो-तीन सौ वर्षकी आयु रही होगी। इसमें कोई आश्चर्य भी नहीं। क्योंकि— कल्याण संत-अंकमें—श्री तैलगस्वामी काशीवालोंकी आयु २८० वर्षकी बतायी है। ये स्वामी अभी थोड़े दिन पूर्व विद्यमान थे। अंग्रेज इतिहासकारों ने भी तैलंगस्वामीकी लम्वी आयु मानी है। इस प्रकार आचार्यने वड़े अद्भुत-अद्भुत कार्य किये और देशमें जो अनेकों धार्मिक कलह वढ़े थे उन्हें नष्ट किया। इधर वौद्ध-धर्म, जैनधर्म आदि झगड़ रहे थे। दक्षिणमें उधर शैव-वैष्णव विद्रोह फैल हुआ था। शक्तिके उपासक भी जगदम्वाके सामने जीवोंको काटकर तमोगुण वढ़ा रहे थे। अघोरमत तो गन्दी चीजों (मुर्दे आदि) को भी खानेवाला था। पंच-मकारी भी वढ़ रहे थे। यवनोंकी वादशाहतने तो देशको गुलाम वना ही रखा था। हिन्दूधर्म सव आपसमें एक दूसरेका खण्डन करनेमें मार-काट मचा रहे थे। ऐसे समयमें श्री रामा-नन्दाचार्य जीने प्रकट होकर श्री राम-चरितका आदर्श सामने रखकर श्री रामकी पवित्र उपासनाका मार्ग दिखलाया। लोकरक्षक पतितपावन श्री रामके समान ही आपने हिन्दू-मात्रका संगठन किया। रैदास, कवीर, धना, सेनानाई, आदि सवको श्री राम-भक्ति प्रदान कर दी। सवके हृदयोंमें रामका आदर्श प्रिय लगा। घर-घर श्री राम-नाम और श्री राम-चरित्रका प्रचार हुआ। श्री रामानन्दाचार्यने दिग्विजय करके समस्त विरोधियोंको परास्त करके उन्हें वैष्णव बनाया। समस्त हिन्दूधर्मोंका समन्वय करके एक सूत्रमें वाँधा कि परात्पर व्रह्म श्री राम दशरथनन्दन ही हैं। उन्हींके नाम-मंत्रसे मोक्ष होता है।

श्री रामानन्दाचार्य जीके रचे कई संस्कृत-ग्रन्थ प्राप्त होते हैं 'वैष्णव-मताब्जभास्कर', 'आनन्दभाष्य', 'अमृत-वर्षिणी' आदि। और हिन्दीमें आपका रचा (रामरक्षा-कवच) विशेष प्रसिद्ध है। श्री रामानन्द-सम्प्रदायकी मान्यता

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है कि—श्री रामानुजाचार्यका श्री रामानन्दाचार्यसे कोई सम्बन्ध नहीं है। क्योंकि दक्षिणमें उनकी वैकुण्ठनाथ लक्ष्मीनारायणकी ही प्रधान उपासना है—वे श्री राम, श्री कृष्ण आदिको श्री विष्णु भगवान्का अंशावतार मानते हैं। इधर श्री रामानन्दाचार्य श्री रामको अनन्तकोटिब्रह्माण्ड-नायक मानकर विष्णु आदिको उनका अंश मानते हैं। और श्री रामानन्दके गुरुका नाम श्री राघवानन्द है तथा श्री रामानन्दजीके शिष्योंका नाम श्री अनन्तानन्द, श्री योगानन्द श्री नरहर्यानन्द है। आनन्दपरक नाम श्री रामानुजमतमें किसी भी आचार्यका नहीं है। इसलिए पता लगता है कि काशीमें रामोपासक संन्यासियोंका प्राचीन केन्द्र था। उसका नाम श्रीमठ था और उन संन्यासियोंका विश्वभरमें प्रचार था और आनन्दपरक नाम होता था। श्री राघवानन्दजीका भक्तमालमें वर्णन है कि उन्होंने भी दिग्विजय किया था—'पत्रावलम्ब पृथ्वीकरी काशी स्थाई।' और श्री राघवानन्दजीके भी गुरु श्री हर्यानन्दजी थे जो साक्षात् बृहस्पतिके समान थे।

देवाचारज दितिय
महामहिमा हरियानँद।
तस्य राघवानन्द भये
भक्तनको मानँद॥

अर्थात्—'देवताओंके आचार्य दूसरे बृहस्पतिकी भाँति आपकी महान् महिमा थी।' 'उनका स्थायी मठ प्राचीन काशीमें था। इसका वर्णन एक प्राचीन अंग्रेज इतिहासकार डॉ० विल्सनने लिखा है कि—'काशीमें पंचगंगा घाटपर श्री रामानन्दस्वामीके रहनेका मठ था। उस प्राचीन मठको मुसलमान बादशाहोंने तोड़ा था और उसके भग्नावशेष पर मस्जिद बनवा दी है। अब उसके समीप एक पत्थरके चबूतरेपर श्री रामानन्दाचार्यकी चरणपादुका केवल बनी हुई है। काशीमें रामानन्दाचार्यके सम्प्रदायके और भी बहुत-से मठ बने हुए हैं जिनमें उनके प्रख्यात अनुयायी रहते हैं और जिनकी एक पंचायत बनी हुई है।'

इस प्रमाणसे पता चलता है कि रामानन्दसम्प्रदायकी प्राचीन पीठ काशीमें थी। विश्वनाथ मंदिर तोड़नेके समय उसे भी तोड़ा गया। हिन्दुओंके प्राचीन चिह्न नष्ट करना ही यवनोंका लक्ष्य था। अच्छा हो यदि फिर वह प्राचीन पीठ काशीमें बन जाय और उसका नाम श्रीमठ रखकर श्रीरामानन्दाचार्यके उदार सिद्धान्तोंका विश्वमें प्रचार किया जाय। समस्त हिन्दूमात्रका कर्तव्य है—ऐसे महान् कार्योंमें उत्साह प्रदान करना।

श्री रामानन्दाचार्यका श्रीरामपरक विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त भी बड़ा ही सुन्दर और सुखद है। उसपर दूसरे लेखमें विस्तारसे विवेचन हो सकेगा।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रतीत्यसमुत्पाद

श्रीलक्ष्मण त्रिवेदी, सत्ताचार्य
प्राध्यापक—वि० वै० शोधसंस्थान, होशियारपुर

भारतीय-दर्शन विभिन्न धाराओंमें विभक्त हैं परन्तु इस विषयमें सबका एक मत है कि सर्वविध दुःखका आत्यन्तिक उच्छेद होना चाहिए। सभी का कहना है कि आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—इन तीन प्रकारके दुःखोंकी निवृत्ति ही परम पुरुषार्थ है। सांख्य-दर्शनका मूल-सूत्र यही है। योग-दर्शनमें भी परिणामदुःख, तापदुःख, संस्कार-दुःख आदि अनेक प्रकारके दुःखोंका वर्णन है फिर उनका निवारण परम पुरुषार्थ क्यों न हो। भले ही कोई कैवल्यकी प्राप्ति, सच्चिदानन्दघन ब्रह्मका साक्षात्कार, स्वर्ग अथवा अभ्युदयकी उपलब्धिके लिए शत-शत, सहस्र-सहस्र प्रयास प्रारम्भ करे परन्तु मानव-जातिके इस पौरुषका इतिहास दुःखनिवृत्तिके उपायोंमें ही केन्द्रित है। उसी दुरुच्छेद्य दुःखका उच्छेद करनेके लिए भिषक्शिरोमणि तथागतने 'प्रतीत्य-समुत्पाद' नामक एक दर्शन-धाराको प्रकट किया है।

समग्र बौद्ध-दर्शनके चार स्तम्भ हैं—प्रतीत्यसमुत्पादवाद, अनात्मवाद, अनीश्वरवाद और क्षणभंगवाद। उनमें प्रतीत्यसमुत्पादवाद ही मुख्य है और वह मालामें सूतके समान सबमें अनुस्यूत है। जब भगवान् तथागत बोधिवृक्षके नीचे सत्यका साक्षात्कार करनेके लिए प्रयत्नशील थे, तब उन्हें पहले प्रहरमें पूर्वजन्मका ज्ञान हुआ था, दूसरेमें दिव्यदृष्टि प्राप्त हुई थी और तीसरेमें प्रतीत्यसमुत्पादका साक्षात्कार हुआ था। इसीसे उन्हें कृतार्थताकी प्राप्ति हुई। इसी प्रतीत्य-समुत्पादमें तथागतकी अनल्प-कल्पकी आत्मलीन महाकरुणा ज्ञानके रूपमें अवतीर्ण हुई थी। हमारा विश्वास है कि जो लोग इस यथार्थ सत्यको नहीं जानते, वे सूतकी तरह परस्पर संलग्न, रज्जुके समान ग्रन्थिबद्ध और

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सींकके समान मुंजकोषसे वेष्टित होकर विनाश, दुर्गति और अधःपतनसे मुक्त होनेमें असमर्थ हो रहे हैं। स्वयं भगवान् तथागतने भी बार-बार इस सिद्धान्तकी गम्भीरताका स्मरण किया है। संसारके प्राणी तृष्णासे व्याकुल होकर जन्म, जरा, मरण आदिके चक्रमें पड़े हुए हैं। इनके बन्धनके उन्मोचन और भवसागर-तरणके लिए तथागतने एक दिव्यदृष्टि प्रस्तुत की है। इस प्रतीत्यसमुत्पाद-सिद्धान्तमें चार आर्य-सत्योंका निदान और औषध दिया गया है। वे चार सत्य हैं—दुःख क्या है? दुःखकी उत्पत्ति क्यों होती है? दुःखकी निवृत्तिका क्या स्वरूप है और दुःख-निवृत्तिके लिए क्या उपाय करना चाहिए? विद्वान् नागार्जुनने ठीक ही कहा है कि जो मनुष्य प्रतीत्य-समुत्पादको जान लेता है वह दुःख, दुःखहेतु, दुःखनिरोध और निरोधके मार्गको भी जान लेता है। शान्त-रक्षितकृत 'तत्त्वसंग्रह'की कमलशील-कृत 'पंजिका' टीकामें प्रतीत्य-समुत्पादकी विस्तृत व्याख्या की गयी है। वह वहीं देखने योग्य है। भावोंकी हेतु-प्रत्ययसापेक्ष उत्पत्तिको प्रतीत्य-समुत्पाद कहते हैं। पाली-साहित्यमें कहा गया है कि इसके होनेपर यह होता है। इसकी उत्पत्ति होनेपर इसकी उत्पत्ति होती है; इसके न होनेपर यह नहीं होता और इसकी निवृत्ति होनेपर यह निवृत्त हो जाता है। इस अन्वय-व्यतिरेककी युक्तिसे सापेक्ष कार्य-कारणके ज्ञानको ही प्रतीत्यसमुत्पाद कहते हैं। केवल कार्य-कारण भावके निरूपणमें ही प्रतीत्यसमुत्पादका अभिप्राय नहीं है, प्रत्युत सम्पूर्ण कार्य-कारण भाव ही शून्यमें प्रत्यय-मात्र है इस अभिप्रायसे हैं। हेतु भी प्रत्यय है और उत्पत्ति भी प्रत्यय है। इसके सम्बन्धमें कहा गया है कि केवल उत्पत्तिमात्रका नाम 'प्रतीत्यसमुत्पाद' नहीं है। जिस वस्तुके होनेपर दूसरी वस्तुकी उत्पत्ति होती है, उसके पहलेकी वस्तु ही वस्त्वन्तरका प्रत्यय बनती है। हेतु प्रत्ययका आश्रय करके ही अथवा उनके साथ ही उत्पत्ति होती है। 'प्रतीत्यसमुत्पाद' शब्दमें प्रतीयमान प्रत्यय, शब्द, हेतु, कारण, निदान, समुदाय और उद्भव आदि शब्दोंका पर्यायवाची ही है। पाली-भाषाके ग्रन्थोंमें इसीको 'तथता', 'अवितथता', 'अनन्यतया' आदि कहा गया है। एक प्रकारसे यह सापेक्ष कारणवाद अथवा सहेतुक धर्मज्ञान ही है। इसीको प्रज्ञाभूमि भी कहते हैं।

इस प्रतीत्यसमुत्पादके बारह अंग और तीन काण्ड होते हैं। अविद्या आदि बारह अंग पुनर्जन्मके सिद्धान्तको स्वीकार करके तीन भागोंमें बाँट दिये जाते हैं—कुछ इस जन्मके, कुछ पूर्वजन्मके और कुछ आगे होनेवाले

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जन्मके हैं। इस प्रकार उसके तीन विभाग हो जाते हैं। अविद्या और संस्कार पूर्वजन्मसे सम्बद्ध हैं। जरा और मृत्यु भविष्य जन्मसे सम्बद्ध है और बीचके आठ वर्तमान जन्मसे सम्बन्ध रखते हैं। इनकी शृङ्खला इस प्रकार है—

१—२ : अविद्या प्रत्ययसे संस्कार बनते हैं।

२—३ : संस्कार प्रत्ययसे विज्ञान होता है।

३—४ : विज्ञान प्रत्ययसे नाम-रूपकी उत्पत्ति होती है।

४—५ : नाम-रूपके प्रत्ययसे षडायतन (पाँच इन्द्रियों और मन अधिकरण—अन्तःकरण) बनता है।

५—६ : षडायतन प्रत्ययसे स्पर्श होता है।

६—७ : स्पर्श प्रत्ययसे वेदना होती है।

७—८ : वेदना प्रत्ययसे तृष्णा होती है।

८—९ : तृष्णा प्रत्ययसे उपादान अर्थात् भौतिक सामग्री स्थूल शरीरका निर्माण करती है।

९–१० : उपादान प्रत्ययसे भव होता है।

१०–११ : भव प्रत्ययसे जाति होती है।

११–१२ : जाति प्रत्ययसे जरा-मरण होता है।

इसी जाति-प्रत्ययसे, कि मेरा जन्म हुआ है, मेरे जैसे और बहुत-से लोग हैं, शोक, सन्ताप, विलाप, दुःख, दौर्मनस्य आदि भी उत्पन्न होते हैं। जीवनमें दुःख आनेकी यही प्रक्रिया है। इसीको प्रतीत्यसमुत्पाद कहा गया है। अब इसके निवारणकी प्रक्रिया देखिये—अविद्याके निरोधसे संस्कारका, संस्कारके निरोधसे विज्ञानका, विज्ञानके निरोधसे स्पर्शका, स्पर्शके निरोधसे वेदनाका, वेदनाके निरोधसे तृष्णाका, तृष्णाके निरोधसे उपादानका, उपादानके निरोधसे भवका, भवके निरोधसे जातिका और जातिके निरोधसे जरा-मरणका निरोध हो जाता है। इसके बाद शोक, सन्ताप, विलाप-कलाप, दुःख-दौर्मनस्य—सभीका निरोध हो जाता है। इस प्रकार दुःख-स्कन्ध अर्थात् दुःखका कोई पहलू शेष नहीं रहता। इसको भी प्रतीत्यसमुत्पाद ही कहते हैं। अविद्यासे लेकर जरा-मरण पर्यन्त प्रतीत्यसमुत्पादका क्षेत्र है। एक-बार क्रमशः फिर देख लीजिये—(१) अविद्या, (२) संस्कार, (३) विज्ञान, (४) नाम-रूप, (५) षडायतन, (६) स्पर्श, (७) वेदना, (८) तृष्णा, (९) उपादान, (१०) भव, (११) जाति, (१२) जरा-मरण।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इन बारह अंगोंका अनुलोम-प्रतिलोम प्रकारसे अर्थात् ये किस प्रकार उत्पन्न होते हैं और कैसे इनका निरोध होता है, ध्यान करनेपर जीवनके सभी दुःखोंकी निवृत्ति हो जाती है। दुःखको उत्पत्ति और निरोधकी विधिसे गर्भित है यह विचार-प्रक्रिया। इस कार्य-कारणात्मक भवचक्रका ही नाम है—प्रतीत्यसमुत्पाद। जो इसका परिशीलन नहीं करता, उसका जीवन व्यर्थ है; क्योंकि इस प्रक्रियाका अनुशीलन करने मात्रसे ही लेश-मात्र भी क्लेश नहीं रहता।

विवेचनका प्रकार

१–२ : अविद्या प्रत्ययसे संस्कार की उत्पत्ति होती है। अविद्या अर्थात् आर्यसत्योंका अज्ञान। आर्यसत्य हैं चार—दुःख, दुःखकी उत्पत्ति, दुःखनिरोध और दुःखनिरोध गामिनी प्रतिपद्। इसका अर्थ है—दुःखनिरोधकी साधना। यह अविद्या सांख्य और वेदान्त-दर्शनकी अविद्याके समान नहीं है; क्योंकि वह अविद्या तो संसारका कारण है। उसका और कोई कारण नहीं है। परन्तु यह बौद्ध-दर्शनकी अविद्या वैसी न होकर आस्रव समुदयसे उत्पन्न होती है। यह अनित्य, संस्कृत और प्रतीत्यसमुत्पन्न होती है। अविद्या अर्थात् जन्मान्तरकी वह अवस्था जिसमें प्राणी अज्ञान, मोह और लोभसे आबद्ध होकर क्लेश सह रहे हैं। इसी अविद्याके प्रत्ययसे संस्कारकी उत्पत्ति होती है। द्रोह, मोह एवं राग संस्कार हैं। इस प्रकार अविद्या प्रत्ययसे उनकी उत्पत्ति होती है।

२–३ : संस्कार प्रत्ययसे विज्ञानकी उत्पत्ति होती है। विज्ञान अर्थात् माताके गर्भमें प्रवेश और चैतन्य-प्राप्ति। यही विज्ञान जन्मान्तरका कारण है; क्योंकि जन्मान्तरके किये हुए कुशलाकुशलरूप शुभाशुभ कर्म ही परिणामको प्राप्त होकर जीवनमें नेत्र, कान, जिह्वा आदि विषयक अनुभूतिके कारण होते हैं। कहीं-कहीं विज्ञानको प्रतिसन्धि-स्कन्ध कहते हैं। प्रतिसन्धि क्षणमें कुक्षिगत पंचस्कन्ध 'ही 'विज्ञान' शब्दसे कहे जाते हैं। इस प्रकार द्रोह, मोह और राग नामक संस्कारोंकी ही उत्पत्ति होती है।

३–४ : विज्ञान-प्रत्ययसे नाम-रूपकी उत्पत्ति होती है। रूप माने शरीर। नाम माने मन। यहाँ औपनिषद् अर्थमें इनका प्रयोग नहीं है। 'मिलिन्दप्रश्न' में स्थूल वस्तुओंको नाम और सूक्ष्म मानस धर्मोंको रूप कहा गया है। कहीं ऐसा भी कहा गया है कि रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान—इन पाँच स्कन्धोंमें पहला रूप है, शेष चार नाम हैं। इस प्रकार विज्ञानसे नाम-रूपकी उत्पत्ति होती है।

४–५ : नामरूप प्रत्ययसे षडायतनकी उत्पत्ति होती है। षडायतन शब्दका अर्थ है—नेत्र, कर्ण, घ्राण,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जिह्वा और त्वचा—इन पाँच इन्द्रियोंके साथ मन भी आयतन हैं। बौद्ध-दर्शनमें मन-आयतन शब्दसे चेतनाके विभिन्न स्वरूपोंका ग्रहण होता है। इस प्रकार नामरूप प्रत्ययसे षडायतनकी उत्पत्ति होती है। इसका अभिप्राय यह है कि वेदना, संज्ञा, संस्कार, संस्काराद्यात्मक नामोंसे और चार महाभूतों तथा उनके विकारोंसे जिन्हें रूप कहते हैं—इन्द्रियोंकी अनुभूतियाँ उत्पन्न होती हैं।

५–६ : षडायतन प्रत्ययसे स्पर्शकी उत्पत्ति होती है। स्पर्श अर्थात् इन्द्रियोंका विषयोंके साथ संयोग। वह छः प्रकारका होता है। (१) अक्षिस्पर्श, (२) कर्णस्पर्श, (३) घ्राणस्पर्श, (४) जिह्वास्पर्श, (५) शरीरस्पर्श, (६) मनस्पर्श। ये शुभ-अशुभ कर्मके परिणाम हैं। ये छः प्रकारके स्पर्श अपने-अपने आयतनोंसे उत्पन्न होते हैं।

६–७ : स्पर्श प्रत्ययसे वेदनाकी उत्पत्ति होती है। यह वेदना क्या है ? इन्द्रिय और विषयोंके संयोगसे मनपर जो पहला प्रभाव पड़ता है, उसीको वेदना कहते हैं। इन्द्रिय और विषयोंका परस्पर स्पर्श होनेपर वेदनाका निरोध नहीं किया जा सकता। इसीको स्पर्श प्रत्ययसे वेदनाकी उत्पत्ति कहते हैं।

७–८ : वेदनाकी उत्पत्ति होनेपर यह सुख मुझे प्राप्त करना चाहिए—ऐसा निश्चय ही तृष्णा है। यह तृष्णा छः प्रकारकी होती है। (१) शब्दतृष्णा, (२) स्पर्श तृष्णा, (३) रूपतृष्णा, (४) रसतृष्णा, (५) गन्धतृष्णा, (६) मनस्तृष्णा। यह तृष्णा सर्पिणी है। इसके विनाशके विना दुःखकी आत्यन्तिक निवृत्ति नहीं हो सकती। इस तृष्णासे ही सब दुःखोंकी उत्पत्ति होता है। इस संसाररूपी विष-वृक्षका बीज तृष्णा ही है। वेदना प्रत्ययसे ही तृष्णाकी उत्पत्ति होती है।

८–९ : तृष्णा प्रत्ययसे उपादानकी उत्पत्ति होती है। 'शालिस्तम्ब' सूत्रमें उपादानका अर्थ तृष्णाकी विपुलता कहा गया है। वह प्रधानतया तीन प्रकारका है। (१) कामोपादान (स्त्री-पुरुषकी परस्परासक्ति), (२) शीलोपादान अर्थात् व्रतासक्ति, (३) आत्मोपादान अर्थात् आत्माके नित्यताकी आसक्ति। यह तीसरा उपादान सबसे अधिक दुःखदायी है। तृष्णा प्रत्ययसे उपादानकी उत्पत्तिका यही प्रकार है।

९–१० : उपादान प्रत्ययसे भवकी उत्पत्ति होती है। भव शब्दका अर्थ है—वह कर्म जिससे पुनर्जन्म होता है। बौद्ध–शास्त्रमें भवका विवेचन इस प्रकार किया गया है—'भवति अस्मात् जन्म इति भव.' जिससे जन्म होता है उसको भव कहते हैं। भव अर्थात् धर्माधर्म। जो कर्म

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भविष्य जन्मका हेतु है वही भव है, चाहे वह शरीर, वाणी या मनसे किया गया हो। कहनेका अभिप्राय यह है कि भवसे ही शुभाशुभ कर्म होते हैं और उनसे नवीन-नवीन जन्मकी प्राप्ति होती है। यह दो प्रकारका है—कर्मभव और जन्मभव। पुनर्जन्मका हेतु पहला है और भिन्न-भिन्न उपादानोंका आश्रय लेकर भिन्न-भिन्न लोकमें जन्म-ग्रहण करना दूसरा। इस प्रकार उपादान प्रत्ययसे भवकी उत्पत्ति होती है।

१०–११ : भव प्रत्ययसे जाति होती है। जाति माने जन्म। जब जीव माताके गर्भमें आता है, तब रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान—इन पाँचों स्कन्धोंकी स्फूर्ति होती है। भव प्रत्ययके बिना माताके गर्भमें आगमन सम्भव नहीं है, इसलिए यह कथन सर्वथा युक्तियुक्त है कि भव प्रत्ययसे जातिकी उत्पत्ति होती है।

११–१२ : जाति प्रत्ययसे ही जरा-मरणादि उत्पन्न होते हैं। जरा अर्थात् उत्पन्न रूप, वेदना आदि स्कन्धोंका परिपाक। इन स्कन्धोंका विनाश ही मरण है। यह जाति ही जरा-मरण, शोक, परिवेदन, दौर्मनस्य आदि दुःखोंका कारण है। इसलिए इसके निरोधसे ही जरा-मरण आदि सबका निरोध हो जाता है।

यदि इस बातको प्रारम्भसे न लेकर प्रतिलोम पद्धतिसे विचार करें तो जाति निरोधसे जरा-मरणादिका, भव निरोधसे जातिका, उपादान निरोधसे भवका, तृष्णा निरोधसे उपादानका, वेदना निरोधसे तृष्णाका, स्पर्श निरोधसे वेदनाका, षडायतन निरोधसे स्पर्शका, नाम-रूप निरोधसे षडायतनका, विज्ञान निरोधसे नाम-रूपका, संस्कार निरोधसे विज्ञानका, और अविद्या निरोधसे संस्कारका निरोध किया जा सकता है। बार-बार आर्यसत्योंका अनुशीलन और तदनुकूल आचरणसे ही यह निरोध शक्य है अन्यथा नहीं।

इस प्रकार भगवान् तथागतके द्वारा आविर्भावित प्रतीत्यसमुत्पादके द्वारा यह सिद्ध होता है कि यह मानव-जीवन परस्पराश्रित सम्बन्धोंका एक केन्द्र है और कार्य-कारण श्रृंखलासे आबद्ध है। मनुष्य यदि ठीक-ठीक इसको हृदयंगम कर ले तो स्वयं ही अपना उद्धार कर सकता है। इस प्रतीत्यसमुत्पादमें अत्यन्त सुस्पष्ट, चित्र-विचित्र चित्र खींचकर यह प्रदर्शित किया गया है कि मनुष्य अविद्याके वशवर्ती होकर किस प्रकार संस्कार, विज्ञान, नाम-रूप आदि भिन्न-भिन्न प्रतीतियों और चेतनाकी अवस्थाओंके कीचड़में गिरकर अपने प्रत्ययोंसे ही अपने-आप दुःखी हो रहे हैं। इस प्रतीत्यसमुत्पादके ध्यानसे यह जानकर कि सम्पूर्ण जगत् दुःखाक्रान्त हो रहा है, मनुष्य इसके निरोधके

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लिए दृढ़संकल्प करके साधन-पथ-पर अग्रसर होता है। इस प्रक्रियाके द्वारा दुःखकी उत्पत्ति और निवृत्ति—दोनोंको ही निरावरण कर दिया गया है। भगवान् तथागतके इसी सिद्धान्त-को भवचक्र, धर्मचक्र अथवा ब्रह्मचक्र कहा जा सकता है।

अब प्रश्न यह है कि कारण-कार्य शृंखलात्मक प्रतीत्यसमुत्पादमें अचल चैतन्य स्वीकार नहीं किया जायगा तो इस प्रवाहकी सिद्धि ही कैसे होगी। इसका उत्तर यह है कि भगवान् तथागत केवल दुःखोंकी उत्पत्तिकी प्रक्रिया और उनके निरोधकी दृष्टिका ही उपदेश करना चाहते हैं। इसके लिए जो अनुपयोगी सिद्धान्त हैं, उनकी चर्चा करना उन्हें अभीष्ट नहीं हैं; क्योंकि उनके मतमें प्रतीत्यसमु-त्पादके परे जो वस्तु है, वह अव्याकृत है। विशेष आकार-प्रकारके निरूपणके साथ उसका सम्बन्ध नहीं है। इसीसे श्री शंकराचार्यचरणने प्रतीत्यसमु-त्पादपर केवल इतना ही आक्षेप किया है कि 'प्रत्येक संघात किसी दूसरे भोक्ताके लिए होता है और तुम लोग उसे स्वीकार ही नहीं करते।' उन्होंने बौद्ध-दर्शनकी यह दुर्बलता भी दिखायी है कि 'यदि अविद्या संस्कार आदि पदार्थोंकी परस्पर उत्पत्तिमें निमित्तता है तो वह रहे, उसपर हम कोई टीका-टिप्पणी नहीं करना चाहते, परन्तु किसी एक चैतन्यके बिना संघातकी सिद्धि ही कैसे होगी?' निश्चय ही आचार्य-चरणकी युक्ति प्रबल है, परन्तु यह भी ध्यान रखने योग्य है कि दुःखकी निवृत्तिमें इस सिद्धान्तकी वास्तविक उपयोगिताका खण्डन नहीं किया जा सकता। इसके अनुशीलनसे साधकोंके दुःखकी निवृत्ति तो अवश्य होगी। ●

●

वह यहाँ नहीं है

'गुरु थे गोरखनाथ और शिष्य राजा भर्तृहरि। भर्तृहरि कहीं यात्रा-कर रहे थे।' पीछेसे गुरु गोरखनाथ आ गये। गुरुजीने थोड़ा रुक-रुक-कर भर्तृहरि को दो-तीन लात लगायी। उन्होंने पीछे घूमकर देखा तक नहीं, और चलते रहे। थोड़ी दूर चलनेके बाद भर्तृहरिने मुड़कर पीछे देखा और बोले—'गुरुजी! आप जिसको ढूँढ रहे हैं वह यहाँ नहीं है अर्थात् अभिमानको चोट लगती है और अपमान भी उसीका होता है; वह यहाँ है ही नहीं।'

●

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

महाराजश्रीके कुछ पत्र

• धर्मकी रक्षा करो

सप्रेम नारायणस्मरण । : १ :

आपका पत्र मिला । आपने किसी पत्रमें छपे जोशीजीके लेखको पढ़ा और उसे मेरे भाषणका खण्डन माना । मेरे विचारसे वह लेख मेरे भाषणका खण्डन नहीं है । जोशीजीके किसी भक्त सेठने मेरे भाषणको पढ़ा और उसे भ्रम हुआ । आप जानते हैं कि अविद्यापूर्वक ही भ्रम होता है अर्थात् उस सेठने मेरे भाषणका अभिप्राय नहीं समझा । अब जोशीजी उसके भ्रमको दूर करनेके लिए यदि कोई निबन्ध लिखते हैं तो वह मेरे भाषणका खण्डन नहीं हुआ, मण्डन ही हुआ । जोशीजीके शब्दोंमें वह 'मेरे भाषणका स्पष्टीकरण' है । इतने सद्भावपूर्ण लेखके खण्डनका कोई प्रश्न ही नहीं उठता ।

इस बातपर भी ध्यान दीजिये कि मैं सनातनधर्मी एवं वर्णाश्रमो शास्त्रोक्त धर्मानुयायी लोगोंपर आक्षेप कहाँ करता हूँ ? मेरा कहना तो यह है कि आप जैसे रहते हैं, वह ठीक है; परन्तु जो लोग इस प्रकार नहीं रहते वे भी हिन्दू ही हैं । आप 'जन्मना वर्णः' मानिये और दूसरेको कर्मणा मानने दीजिये । आप मूर्तिपूजा कीजिये; जो नहीं करते हैं, वे आर्यसमाजी हिन्दू ही हैं—ऐसा मानिये । अपने विरोधीको हिन्दू-समाजसे बहिष्कृत मत कीजिये । मुझे संघर्ष और विघटन पसन्द नहीं है और वह किसी भी बुद्धिमान्को पसन्द नहीं होगा । तत्त्वज्ञानी पुरुषके कर्मके साथ ही अनिषिद्ध पदका प्रयोग करके मैंने शास्त्रका कितना समादर किया है, इसको कोई वेदान्तवेत्ता ही समझ सकता है । वह भामतीकी एक पंक्तिका अनुवाद है ।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

साधुओंके भिन्न-भिन्न सम्प्रदायोंमें सम्पूर्ण मानवजातिके उद्धारकी प्रक्रिया दी हुई है। जिन शास्त्रोंके पढ़ने-पढ़ानेके अधिकार सीमित कर दिये गये हैं, वह भी सार्वजनिक हितकी दृष्टिसे ही हैं। दशनामी संन्यासी, उदासी, वैष्णव, शैव, शाक्त—सभी सम्प्रदाय, सभी वर्णों और वर्ण-बाह्योंको भी दीक्षा देकर उनके कल्याणका मार्ग प्रशस्त करते हैं। श्री वृन्दावनधाममें ही श्री हितहरिवंश, श्री हरिदास, श्री हरिव्यासदेव और श्री चैतन्यमहाप्रभुके अनुयायियोंमें सभी जाति-उपजातिके लोग दीक्षित होते और अपना कल्याण करते हैं। श्री रामानन्द-सम्प्रदायके अन्तर्गत कबीरदास और रैदासका भी समावेश है। मध्यकालीन सन्तोंमें अपने सम्प्रदायकी शिक्षा-दीक्षाका ही सम्मान रहा है। दक्षिणके आलवार, नामनार तथा नारायणस्वामी, गुजरातके स्वामिनारायण, महाराष्ट्रके वारकरी सन्त, कर्णाटकके बसवेश्वर, असमके लचित, कहाँ तक गिनायें हमारे भिन्न-भिन्न साधु-सम्प्रदायके महात्माओंने इस बातका विशेष ध्यान रखा है कि कोई भी व्यक्ति अपने वर्ण और जातिकी हीनताके कारण अपनेको हीन न समझे, प्रत्युत अपनेको भगवत्कृपापात्र एवं भगवत्प्राप्तिके योग्य समझे। आप सभी सम्प्रदायोंके अखाड़ोंकी परिपाटी-पर विचार करेंगे तो ज्ञात होगा कि हमारे साधु-समाजने शताब्दियोंसे कितना जनहित किया है और आगे भी करेगा।

आप जानते हैं कि कम्यूनिस्ट धर्म और ईश्वरकी आस्थाको चौपट कर रहे हैं। यदि हमारे सेठ लोग गरीबोंकी उन्नति और प्रगतिके लिए समान सुविधा देनेके लिए अपनी मुट्ठी खोलें तो इनका धन तो अवश्य थोड़ा कम होगा; परन्तु ईश्वर और धर्मपर लोगोंकी आस्था बनी रहेगी। इस इतनी बड़ी वस्तुको बचानेके लिए हरिजनोंको लौकिक उन्नतिमें सर्वविध सुविधा प्रदान करना हानिकर नहीं; लाभका व्यापार है। परन्तु आजकलके सेठ लोग पूँजीके प्रति इतनी गहरी पकड़ रखते हैं कि वे ईश्वर और धर्मकी आस्थाका नाश देखते हुए भी पैसेको बचानेके लिए दुराग्रही हो रहे हैं। इसका परिणाम भी उन्हें ही भोगना पड़ेगा।

हमारे देशमें विदेशसे आकर मिशनरी लोग छल-बलसे अनपढ़ और गिरिवनवासियोंको भारतीय संस्कृतिसे च्युत करके अपने मजहबमें दीक्षित कर रहे हैं। इस प्रकार दिनोंदिन हिन्दू-समाजका ह्रास हो रहा है। इस विनाशसे भारतीयताकी रक्षाके लिए यदि साधु-समुदाय आगे नहीं बढ़ेगा तो हमें देशका कल्याण नहीं दीखता है। क्योंकि राजनीतिक

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संस्थाएँ दलबन्दी और व्यक्तिगत स्वार्थका शिकार हो चुकी हैं। उनसे कोई आशा रखना ठीक नहीं होगा। सरकार अपनी ही उलझनोंमें उलझी हुई है। जनताकी समस्याएँ सुलझानेका उसे अवकाश ही नहीं है। आप इसपर गम्भीरतासे विचार कीजिये। शेष भगवत्कृपा !

• शास्त्र सार्वभौम एवं शाश्वत हैं

: २ :

सप्रेम नारायण-स्मरण।

प्रश्न यह है कि प्राचीन शास्त्रोंमें जो अंश अपनी मान्यताके अनुसार नहीं हैं, क्या उन्हें निकाल देना या उनका अर्थ बदल देना उचित है? इसके उत्तरमें निवेदन है कि शास्त्रके किसी अंशको प्रक्षिप्त मानकर निकाल देना अथवा उसके अर्थको बदल देना सर्वथा अनुचित है। पहली बात तो यह है कि अपनी मान्यताके विरुद्ध होनेके कारण ही शास्त्रांशको प्रक्षिप्त माना जाय तो सभी कुछ किसी-न-किसीकी मान्यताके विपरीत पड़ेगा और उसे प्रक्षिप्त मानकर निकाल देना पड़ेगा। दूसरी बात यह है कि बिना किसी बलवत् प्रमाणके किसी अंशको प्रक्षिप्त मानना उचित नहीं है; क्योंकि शास्त्र सब समयके लिए हैं। किसी समय वैसी आवश्यकता पड़ सकती है। सब देशके लिए हैं, इसलिए कहीं-न-कहीं उनकी आवश्यकता हो सकती है। सारी मानव-जातिके लिए हैं, इसलिए किसी-न-किसीके लिए उनकी उपयोगिता हो सकती है। केवल भारतवर्षमें ही खान-पान-परिधान, सन्तान-परम्परा, धार्मिक मर्यादाएँ इतने प्रकारकी हैं कि उन्हें देखकर आश्चर्य होता है। कश्मीरसे आसामतक और हिमालयसे कन्याकुमारीतक जो आचार, आहार, विहार, व्यवहार हैं उन्हें किसी एक सम्प्रदायके अन्तर्गत—चाहे वह जैन हो या वैष्णव, बाँधा नहीं जा सकता। मिथिला, बंगालके और गुजरात, राजस्थानके भोजनमें कितना अन्तर है? क्या आप अपनी मान्यताके विरुद्ध भोजन करनेवालोंको हिन्दू नहीं रहने देंगे? शास्त्र सबका है, सबके हितके लिए हैं। उसे प्रक्षिप्त मत कहिये। पण्डितोंको पैसा दे-देकर उसका अर्थ बदलवाना तो घोर अन्याय तथा बेईमानी है।

मैंने अबसे चालीस वर्ष पूर्व महामहोपाध्याय पं० श्री पञ्चानन तर्करत्नका किसी संस्कृत-पत्रमें एक लेख पढ़ा था। उसका शीर्षक था—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'धर्मविप्लवः'। उसमें यह प्रतिपादन किया गया था कि धर्मविप्लवका कारण क्या है ? वह कुछ इस ढंगका था :—

(१) शास्त्रको न मानना (इससे वासनाकी प्रधानता होकर मनुष्य पतित हो जाता है।)

(२) शास्त्रको पूरा-पूरा न मानना। (इससे मनुष्य तर्क-युक्तियोंके सहारे शास्त्रोंका अङ्ग-भङ्ग कर देता है।)

(३) शास्त्रोंमें कुछ-कुछ प्रक्षिप्त मानना। (ऐसा करनेसे शास्त्रका कोई भी अंश अछूता नहीं बच सकता।)

(४) शास्त्रके परम्पराप्राप्त अर्थोंका तिरस्कार करके नया अर्थ गढ़ लेना। (इससे अपने पाण्डित्यका प्रदर्शन होता है, अभिमान बढ़ता है और शास्त्रके वास्तविक तात्पर्यपर परदा पड़ता है।) इत्यादि।

इसका अभिप्राय यह है कि शास्त्र हमारी रागप्राप्त प्रवृत्तियोंका नियन्त्रण करते हैं। यदि हम राग-द्वेषके अनुसार ही उनका अर्थ करने लग जायँ तो उनका सार्वभौम, सार्वकालिक एवं सार्वजनिक रूप नष्ट होकर केवल अपनी संकीर्ण मनोवृत्तिका विलास हो जायगा। हमारा कहना यह है कि शास्त्रोंका अङ्ग-भङ्ग करना अथवा अर्थमें हेर-फेर करना घोर अन्याय है और धर्मके ह्रास तथा विनाशका कारण है। देश, काल, वय, स्थिति, जाति, व्यक्ति, शक्ति आदिके अनुसार अधिकारी-भेदसे शास्त्रोंकी संगति लगानी पड़ती है। शास्त्रोंकी व्याख्या करनेकी शैली पूर्वमीमांसामें प्रतिपादित की गयी है। शास्त्रोंकी संगति न लगाकर उन्हें प्रक्षिप्त बता देना या मनमाना अर्थ कर देना वैसा करनेवालेकी बुद्धिकी निर्बलताका सूचक है। इसमें शास्त्रका कोई दोष नहीं है।

● श्रीकरपात्री जी एवं हरिजन-समस्या

सप्रेम नारायण स्मरण ! : ३ :

श्री करपात्री जी महाराज मेरे साक्षात् गुरु तो नहीं हैं; परन्तु मैं उन्हें गुरुके समान ही मानता हूँ। वे जब ब्रह्म और धर्मका निरूपण करने लगते हैं तो मेरी बुद्धि श्रद्धासे अवनत हो जाती है। मैं उनकी प्रतिभाका चमत्कार स्वीकार करता हूँ। मुझपर उनका अहैतुक स्नेह है। जहाँतक

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हरिजनोंकी समयस्याका सम्बन्ध है मैं भलीभाँति जानता हूँ कि वे हरिजनोंकी सर्वविध उन्नति एवं प्रगति चाहते हैं। मैंने स्वयं उनके मुखसे सुना है कि वे संसद् या लोकसभामें हरिजनोंका जाना पसन्द करते हैं। वे हरिजनोंको किसी भी ऊँचे आधिकारिक पदपर देखना पसन्द करते हैं। उन्हें हरिजनोंके लिए विद्यालय, चिकित्सालय, आवास, खान-पान, वस्त्र आदिकी सुविधा मिलना उतना ही अभीष्ट है जितना किसी बड़े-से-बड़े हरिजन नेताको।

मुझे एक बारका स्मरण है। श्री करपात्री जी महाराजके सान्निध्यमें लक्षचण्डी-महायज्ञ हो रहा था मेरीनड्राइव वम्बईमें। कुछ लोगोंने गड़बड़ करनेके लिए हरिजनोंको बहका दिया और उन लोगोंने सफाईके कामसे इन्कार कर दिया। उस समय श्री करपात्री जी महाराज स्वयं हरिजनोंके मोहल्लेमें गये। उनकी बहुत बड़ी सभा हुई। महाराजने उनपर ऐसा जादू डाला कि सबके सब मुग्ध हो गये और यह समझने लगे कि हमारे लोक-परलोकहितकारी कोई महात्मा हैं तो श्री करपात्री जी महाराज। यज्ञभूमिमें ही हरिजनोंके लिए एक पृथक् हरिकीर्तन-मण्डप बना और पूर्णाहुतिपर्यन्त उनका अखण्ड हरिनाम-संकीर्तन होता रहा। उस समय श्री करपात्री जी महाराजकी उदारता और निपुणता देखकर हृदय आनन्दसे भर जाता था।

उस यज्ञमें ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य श्री ब्रह्मानन्द सरस्वती जी महाराज भी गये थे जो श्री करपात्री जी महाराजके और मेरे—दोनोंके संन्यास-गुरु थे।

हमारा कहनेका अभिप्राय यह है कि श्री करपात्री जी महाराज वस्तुतः अपने सम्पूर्ण हृदयसे हरिजनोंका लोक-परलोकहित चाहते हैं और उसके लिए प्रयत्न करते हैं। आप उनके बारेमें अपने मनमें कोई शंका न रखें।

● सर्वदलीय गोरक्षा महाभियान-समितिको सुझाव

प्रिय कमल जी, : ४ :

सप्रेम नारायण स्मरण।

आपका अखिल भारतीय सर्वदलीय गोरक्षा महाभियान-समिति एवं उसकी सर्वोच्च कार्यकारिणी समितिकी बैठकमें सम्मिलित होनेके

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लिए आमन्त्रणपत्र प्राप्त हुआ। मुझे बड़ी प्रसन्नता होती, यदि मैं इस बैठकमें सम्मिलित हो पाता। हमारे कार्यक्रम पहलेसे ही सुनिश्चित हो चुके थे और अब अत्यधिक विलम्वसे सूचना मिलनेके कारण उनको कृत्तशिल अथवा स्थगित करना शक्य नहीं है।

मेरा विचार है कि सम्पूर्ण भारतवर्षमें सर्वकारद्वारा संवैधानिक रूपसे गोवंशकी सर्वविध हत्या अविलम्ब बन्द कर देनी चाहिए। साथ ही मेरा यह विचार है कि इस कार्यमें विलम्ब अथवा टालमटोल होनेका एक ही कारण है कि समाजमें गोभक्त संघटनका नितान्त अभाव है। ऐसी परिस्थितिमें किसी प्रकारकी विघटनकारिणी प्रवृत्तिको प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए। समाजमें उपेक्षित और अपमानित लोगोंको भी अपने पक्षमें करना आवश्यक है। इसके विना लक्ष्यपूर्तिमें समग्र शक्तिका विनियोग नहीं हो सकता।

मेरा दूसरा सुझाव यह है कि भारतवर्षमें धार्मिक सम्प्रदायोंकी संख्या अगणित है। उनमें अनेकके अपने-अपने अलग-अलग जगद्गुरु हैं। एकके जगद्गुरुको दूसरे आदरणीयके रूपमें स्वीकार नहीं करते। ऐसी स्थितिमें लक्ष्यप्राप्तिके लिए सभी जगद्गुरुओंका समवेत होना लक्ष्यकी पूर्तिमें सहायक होगा। समितिको ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि सब जगद्गुरु, महामण्डलेश्वर, महन्त, उनके अनुयायी समग्र हिन्दू-समाज और भारतीय नागरिकको इस दिशामें उन्मुख करनेका प्रयत्न करना चाहिए। शक्तिके विना बलवान्से संघर्ष करना बुद्धिमत्ता नहीं है। भिन्न-भिन्न सम्प्रदायोंके अखाड़ोंको भी इस दिशामें सम्मिलित करना चाहिए। अपने सम्प्रदायवालोंको शूद्र एवं पतित कहना किस प्रयोजनकी पूर्तिका साधन हो सकता है? मेरा विश्वास है कि यदि आचार्यगण भारत साधु समाजको संघटनके कार्यक्रमको पूर्ण करनेके लिए अपना मंच बनावें तो अधिक अनुकूलता होगी।

मेरा तीसरा सुझाव यह है कि गोरक्षा महाभियानको राजनीतिक दलबन्दीके दलदलसे सर्वथा पृथक् रखना चाहिए। पिछले आन्दोलनके कटु अनुभवसे यही सिद्ध हुआ है कि यह राजनीतिक नेता सरलचित्त साधुओंको अपनी स्वार्थसिद्धिके द्यूतमें अपना पासा बना लेते हैं। उनका काम शासनको पलटना, अपने दलकी प्रतिष्ठा बढ़ाना, दूसरे दलको नीचा दिखाना और चुनाव जीतना होता है। वे अपने व्यक्तिगत और दलीय स्वार्थके लिए धर्म और गोमाताकी भी बलि चढानेमें संकोच नहीं करते।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भोले महात्माओंकी तो बात ही क्या ? ऐसी स्थितिमें यह संस्था किसीको गिराने और उठानेके षड्यन्त्रसे पृथक् रहकर शुद्धरूपसे केवल गोरक्षाके लिए ही प्रयत्नशील हो, राजनीतिक दलबन्दीमें न फंसे।

मेरा चौथा सुझाव यह है कि जबतक गोभक्तोंका शक्तिशाली संघटन न बन जाये तबतक अनशन आदि उग्र उपायोंका अवलम्बन न लिया जाये। जनताकी पूरी शक्ति अपने साथ हुए बिना ऐसे उपायोंकी सफलता सन्दिग्ध है। इसके लिए मृदु-मध्य उपायोंके द्वारा ही अपने बलको सर्वांग पूर्ण बनाना चाहिए और लक्ष्यकी ओर गतिशील रहना चाहिए।

मेरा पाँचवाँ सुझाव यह है कि हमारे प्रवक्ताओंको अत्यन्त संयमी होना चाहिए। उन्हें भाषणके समय यह ध्यान रखना चाहिए कि इसका परिणाम संघटन है कि विघटन। ईसाई, मुसलमान, कम्यूनिस्ट और नास्तिकता हिन्दू समाजको खाये जा रही हैं। अब इसको और अधिक निर्बल न बनाया जाय। संघे शक्तिः का ध्यान रखना चाहिए। ऐसा कुछ करना चाहिए जिससे अखाड़ेवाले भी इसमें सम्मिलित हो जाँय। अध्ययन-हीन और व्रतशून्य साधु भी संघटन और गोरक्षाके अनधिकारी नहीं हैं। उन्हें भी इसमें सम्मिलित करना चाहिए। सभी वर्गों, आश्रमों और वर्णाश्रम-बाह्योंको भी इसमें सहयोग देनेके लिए पूर्ण रूपसे प्रोत्साहित करना चाहिए। प्रान्त-प्रान्त और मण्डल-मण्डलके स्तरपर महाभियान समितिकी शाखाएँ होनी चाहिए। अन्दोलन सार्वजनिक रूप ग्रहण करे, साम्प्रदायिक नहीं, इसके लिए सावधान रहना चाहिए। साथ ही अधि-कारियोंको समझाने-बुझानेके द्वारा एवं भाषण, लेख, तथा उच्चकोटिके आचरणके द्वारा प्रभावित करनेकी चेष्टा करनी चाहिए।

प्रिय कमलजी, मुझे विश्वास है कि आप समिति और उसकी कार्य-कारिणीके महापुरुषोंके सम्मुख मेरे सुझाव अवश्य रखेंगे। विशेष मिलनेपर। मेरी शुभाशंसा है कि आपकी यह बैठक धर्मानुकूल उचित साधनके द्वारा अपने पथपर अग्रसर होनेका प्रयास करेगी। शुभमस्तु।

—अखण्डानन्द सरस्वती

●

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दीपावलीको शुभकामनाएँ

ॐ यो ह वै श्रीरामचन्द्रः स भगवानद्वैतपरमानन्दात्मा यत्परं ब्रह्म भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः ॥

—श्रीरामोत्तरतापिन्युपनिषत्

लालजीमल टीकाराम

हाथरस

फोन नं० : १२९ तार : GANESH

●

शाखाएँ :

कटरा लेहस्वा, चाँदनी चौक

दिल्ली-६

फोन नं० : २६६९६४ फोन नं० घर : २२८१३७

तार : RAMAPATI

●

दुकान नं० : ९६

तीसरी गली, मङ्गलदास मार्केट

बम्बई-२

फोन नं० : ३१०९५० फोन नं० घर : २९००८१

तार : KAUSHLESH

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

With best wishes from :-

Telephone : 473526

M|S. Natvarlal Govindji Zaveri

Jewellers

264 C. AMARATLAL MANSION

MATUNGA (C. Rly.)

BOMBAY-19

With Best Complements From

"MOUNT UNIQUE"

11Th Floor. Block 86.

Pedder Road, Bombay 26.

Chhotalal N. Shah

10⁻, Audiappa Naick st.

Sowcarpet. Madras 1.

PHONE : 33325

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उठो जागो और लग जाओ

राजमाता विदुला एक स्वाध्यायसम्पन्न, बहुश्रुत, दीर्घदर्शिनी एवं यशस्विनी महिला थीं। एकबार उनका पुत्र सञ्जय अथवा सृञ्जय युद्धभूमिमें सिन्धुराजके हाथों पराजित हो गया। वह हीनभावनासे ग्रस्त होकर हाथ-पर-हाथ रखकर घरमें बैठ गया। उसकी पौरुषके प्रति अनादर-भावना देखकर विदुलाने डाँटा—'मेरे बेटे! तू मुझे दुःख दे रहा है और शत्रुओं को सुख। तू अपने बापका और मेरा सच्चा बेटा नहीं है। निराशाने तुझे अभिभूत कर दिया है। तू नपुंसक हो गया है। उठ, अपने कल्याणके लिए राज्यका भार वहन कर। थोड़ेमें सन्तोष कर लेना राजाका अपमान है। डरो मत, चढ़ाई करो। तू शत्रुओंसे पराजित होकर सो रहा है। उठ, खड़ा हो। क्षुद्र नाला थोड़े जलसे ही उफन जाता है। कायर थोड़ेसे ही सन्तोष कर बैठता है। तू अभी मर जा, परन्तु साँपके दाढ़ तोड़कर। अपने शत्रुओंपर बाजकी तरह झपट। तेरे कर्मसे तेरा यशोगान होना चाहिए। तू भले दो घड़ी जीता रह, परन्तु प्रज्वलित अग्निके समान। भूसीकी तरह सुलग-सुलगकर जलना और धुआँ फैलाना भले-मानुषका काम नहीं है। सफलता-विफलता अपने हाथमें नहीं है। अपना पराक्रम प्रकट कर या मर। तू किसलिये जी रहा है? जिसका यश नहीं, वह माता-पिताका मलमूत्र है। क्या तू भिखारी बनना चाहता है। तुम्हारे आश्रितोंकी क्या दशा होगी। वंशका नाश हो जायगा। शत्रुओंको वृद्धि-समृद्धि प्राप्त होगी। बारम्बार अपमान सहना और क्षमा करते जाना स्त्री-पुरुषका लक्षण नहीं है। शत्रुके प्रति असहिष्णु और अक्षमी होना चाहिए।'

सञ्जयने कहा—'माँ! मैं मर जाऊँगा तो सारी पृथिवीका राज्य लेकर तुम क्या करोगी?' माँने कहा—'पुत्र! तुम्हारे शत्रुओंको

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनादर मिले और मित्रोंको आदर। तुम्हें उन लोगोंका अनुसरण और अनुकरण नहीं करना चाहिए, जो परपिण्डोपजीवी, कृपण और निःसत्त्व जीवन व्यतीत करते हैं। तुम्हारे सेवक सुखी रहें। ब्राह्मण और सुहृदोंकी जीविका तुमसे चले। अपना बाहुबल ही मनुष्यका वास्तविक बल है। मेरे प्यारे पुत्र! जो क्षत्रिय अपने पौरुषको यथाशक्ति प्रकट नहीं करना चाहता और जीना चाहता है, वह चोर है। तुम्हें तुम्हारे रोगकी ओषधि दे रही हूँ। यह तुम्हें हितकारी, प्रिय और मीठा लगना चाहिए। क्या तुम जानते हो कि जिस सिन्धुराजसे हारकर तुम आये हो, उसके राज्यकी जनता उससे सन्तुष्ट नहीं है? वहाँकी प्रजा अपनी निर्बलताके कारण ही किं-कर्त्तव्यविमूढ़ होकर चुप बैठी हुई है और प्रतीक्षा कर रही है कि सिन्धुराजपर विपत्तिके पहाड़ टूट पड़े तो हमारा काम बन जाय। तुम अपना पौरुष नहीं दिखाओगे तो आज जो तुम्हारे पक्षमें हैं वे भी धीरे-धीरे शत्रुपक्षमें चले जायँगे। सहायक, दृढ़ निश्चय और पौरुषका संग्रह करो। उनके साथ संघटन करके पहाड़ और जंगलोंमें रहकर छापामार लड़ाई करना भी उचित है, परन्तु घरमें सोना नहीं। किसीका शरीर अजर-अमर नहीं होता। तुम्हारा सञ्जय नाम निरर्थक है। इसे सार्थक करो। मुझे एक महात्माने कहा था कि तेरा पुत्र एक बार हारकर भी जीत जायगा। विश्वास करो, तुम्हारी जीत होगी। जिसको धन-प्राप्ति दूसरेको सुख और तृप्ति देती है, उसके पास अधिकाधिक धन आता है; क्योंकि वह भी ईमान-दारीका अनुसरण करता है। क्या होगा? इसपर अधिक ध्यान मत दो। वर्तमानमें अपनी खोयी सम्पत्ति लौटानेका प्रयत्न करो। जहाँ प्रातः-सायंके भोजनमें ही सन्देह है, वहाँ पापका निवास है। दरिद्रताको स्वीकृति देना पापीय-सी वृत्ति है। दरिद्रता पति-पुत्रका वध है। दरिद्रता मृत्यु है। मैं भूखों मरती रहूँ। क्षुधासे पीड़ित रहे तुम्हारी पत्नी और तुम टुकुर-टुकुर देखते रहो, इससे तो तुम्हारा मर जाना श्रेष्ठ है। तुम्हारे गुरु-पुरोहित और सेवक भूखसे विकल होकर दूसरेकी शरण ग्रहण करेंगे तो तुम्हारा जीवन किस कामका? मैं तुम्हें निकम्मा देखती रहूँ और चैनसे बैठूँ। देखो, बेटा! यदि मुझे कभी किसी अतिथि-अभ्यागतको 'नाहीं' बोलना पड़ेगा तो मेरा हृदय फट जायगा। हम किसीके आश्रयमें नहीं रहे हैं, अब

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

क्या किसीके आश्रित बनेंगे? नपुंसक मत बनो। उत्साहको नष्ट मत होने दो। अकर्मण्य जीवन पाप है। तुम अपने राज्यकी युवतियोंके वरणीय बनो। शत्रुराज्यके राज्यकी किशोरियोंके गुलाम नहीं। यदि तुम घोड़ेकी तरह पराधीन जीवन व्यतीत करोगे, दूसरेकी चापलूसी करोगे और उनके पीछे-पीछे चलोगे, तो मेरे हृदयको शान्ति कैसे होगी। मैं क्षत्रियके स्वभाव और कर्मको पहचानती हूँ। वह टूट जाता है परन्तु झुकता नहीं। उद्यम ही पौरुष है। क्षत्रिय सबके लिए मतवाला हाथी है। वह केवल धर्मके लिए नम्र है। स्वभाव सहायककी अपेक्षा नहीं रखता।

पुत्रने कहा—माँ! तेरा हृदय फौलादके टुकड़ोंको जोड़कर बना है। तू अपने पुत्रको परायेकी भाँति युद्धमें ढकेल रही है। मैं कहीं युद्धमें मर गया तो तेरा क्या होगा?

विदुलाने कहा—वेटा! मनुष्यका जीवन निष्प्रयोजन नहीं होता। धर्म या अर्थके लिए होता है। इसी दृष्टिसे मैंने यह बात कही है। तुम्हारा यह यौवन, उत्साह और पौरुषका मुख्य काल है। इस समय तुम अपने कर्त्तव्यका पालन नहीं करोगे तो तुम अपयशके भागी बनोगे। यदि मैं ऐसा होने दूँ तो उसका नाम 'मातृ-स्नेह' न होकर 'खरी-वात्सल्य' होगा। तुम पितृ-पितामहके चरितके अनुसार चलो तो मुझे प्रसन्नता होगी। यह शयालु

प्रगति या अगति?

अंतरिक्षमें पैर जमानेवाले मानव!
धरतीसे क्यों
उखड़ रहे हैं पाँव तुम्हारे?
पुराकालमें प्रचलित जीवन-मूल्य
बने क्यों आज अजनबी
और सुखद परिवेश पुराना
बेगाना-सा क्यों लगता है?
जिसे सभ्य इतिहास कह रहा
ज्ञानवृद्ध वह दुनियाँ तेरी
बढ़ती है आगे
या पीछे भाग रही है?
वर्तमानके दर्पणमें
जो उभर रहा है
वह प्रतिबिम्ब तुम्हारा है
या और किसीका?
परिवर्तनकी विकट शृंखला
विजड़ित करती
और सभ्यताकी प्रवंचना
छलती तुमको
ऐसे गत्यवरोध-कालमें
ले केवल संबल
अतीतकी सुधियोंका ही
शायद जीवित रह सकता है
तेरा सुघर स्वरूप!

—श्रीकृपाशंकर शुक्ल

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

और दुर्बुद्धि जीवन किस कामका ? जिसके जीवनमें कोई रुचि नहीं है, उसे रस कहाँसे मिलेगा। गंगा चलकर सागर हो जाती है। बेटा ! मैं तुम्हारा आदर तभी कर सकती हूँ, जब तुम अनेकानेक कष्टोंको सहकर शत्रुपर विजय प्राप्त करोगे।

पुत्रने कहा—मेरे पास न कोष है, न सहायक। तुम युद्धके लिए प्रेरणा दे रही हो। मैंने अब राज्य पानेका संकल्प छोड़ दिया। मैं किस बलपर युद्ध करूँ ?

माताने कहा—पुत्र ! प्रारम्भमें अपनेको कोषहीन अथवा मित्रहीन देखकर अपना तिरस्कार नहीं करना चाहिए। धनका स्वभाव ही है न होकर होना और होकर चले जाना। वैसे तो सभी कर्मोंके फल सर्वदा अनित्य ही होते हैं। करने पर भी कभी मिलते हैं, कभी नहीं मिलते हैं, परन्तु इसका भी एक रहस्य है। न करनेमें एक गुण है—कभी सफलता नहीं मिलेगी। करनेमें दो गुण हैं—सफलता मिल भी सकती है, नहीं भी मिल सकती है। निश्चित विफलताकी अपेक्षा संदिग्ध सफलता श्रेष्ठ है विफलताकी कल्पना मत करो। निश्चय सफलता मिलेगी—इस दृढ़विश्वाससे हृदयको भर लो और लगातार कल्याणकारी कर्म करते जाओ। उठो, जागो और लग जाओ।

उत्थातव्यं जागृतव्यं
योक्तव्यं भूतिकर्मसु।
भविष्यतीत्येव मनः
कृत्वा सततमव्यथैः॥

गुरुजनों, बड़ों और मांगलिक वस्तुओंको आगे करके धावा बोल दो। साहस बटोरकर टूट पड़ो। क्रोधी, लोभी, गरीब, अभिमानी, अपमानित (समाजमें तिरस्कृत) और स्पर्धालुओंको भी अपने पक्षमें कर लो। सावधान ! अप्रमादमें ही विजय है।[1] ऐसा करोगे तो शत्रुओंके पक्षपाती भी फूट-फूटकर तुम्हारे दलमें आ मिलेंगे। सबसे पहले उन्हींको वेतन और भोजन देना। प्रातःकाल उठकर उनका आदर करना और प्रिय बोलना। जब तुम उनसे प्रिय बोलोगे और आगे रखोगे तो वे तुम्हारे साथ भी वैसा ही करेंगे। शत्रुपर दया नहीं करनी चाहिए। वाद-विवाद भी नहीं करना चाहिए। अविवाद रहनेसे शत्रु भी मित्र हो जाते हैं। शत्रुपर विश्वास नहीं, निरीक्षण चाहिए।'

'राजाको डरना नहीं चाहिए। यदि कभी डर भी जाय तो अपनेको डरा हुआ दिखावे नहीं। राजाको

---

१. क्रुद्धान् लुब्धान् परिक्षीणान्
अवलिप्तान् विमानितान्।
स्पर्धिनश्चैव यें केचित्
तान् युक्त उपधारय॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

डरा देखकर मन्त्री, सेना और राष्ट्र सब डर जाते हैं और शत्रुओंके पक्षमें चले जाते हैं। जिनका पहले कभी अपमान किया होता है, वे राजविप्लव करना चाहते हैं। सुहृद् भी दुखीके पास बैठकर दुखी हो लेते हैं, सहायता नहीं करते। जीवनमें सहृदयतासे जिसकी सहायता की जाती है, वही समयपर सच्चा सहायक सिद्ध होता है। तुम अपने सुहृदोंको विदीर्ण होने (फूटने) मत दो और तुम भी उनसे मत फूटो। वे तुम्हें छोड़े नहीं—इसका ध्यान रक्खो। मैंने तुम्हारे प्रभाव, पौरुष और बुद्धिकी परीक्षा करनेके लिए तथा आश्वासन देनेके लिए यह बात कही है। इसीसे तुम्हारी तेजोवृद्धि होगी। यदि मेरी सलाहको तुम ठीक समझते हो तो अपनी सौम्यताको अलग रखकर तेजस्वी बनो और विजयकी प्राप्तिके लिए शत्रुओंपर टूट पड़ो। तुम्हें ज्ञात नहीं है, मेरे पास बहुत बड़ा कोष है। मुझे मालूम है और किसीको नहीं। लो, यह सब। तुम्हारे सुहृद् सहायक हैं। वे तुम्हारे साथ दुःख सहेंगे। तुम्हें छोड़ेंगे नहीं। विजयी होकर लौटेंगे।'

सञ्जय एक क्षुद्रचित्त युवक था, परन्तु अपनी माताके आश्वासनसे उसकी अकर्मण्यता दूर हो गयी और वह शत्रुओंसे युद्ध करके विजयी हुआ। समृद्ध राज्यका स्वामी बना। उत्थानमें ही विजय और लक्ष्मीका निवास है।

[महाभारत-उद्योगपर्व १३३]

●

ईश्वर कहाँ है ?

मैंने पूछा : 'हे प्रभो ! क्या तुम मेरे अन्तर्देशमें छिपे हुए हो ?'

प्रभुने कहा : 'मुझे बन्दी क्यों बना रहे हो ?'

मैंने कहा : 'फिर तुम कहीं बाहर हो क्या ?'

वे बोले : 'मुझे घरसे बाहर क्यों निकाल रहे हो ?'

मैंने निवेदन किया : फिर तो आप दोनों जगह हैं।

प्रभु : नहीं भैय्या ! मैं किसी जगहमें नहीं हूँ। मैं 'तुम' हूँ। इसलिए मेरी चितवनकी एक किरण, मेरी मुसकानकी एक कणिकामें जो धूप-छाँहकी तरह एक चिलक है, प्रतीति है उसीमें 'सब जगहें' चमकती और छिपती रहती है।

●

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कर्मयोगीके

प्राध्यापक पं० नलिन भ० भट्ट—

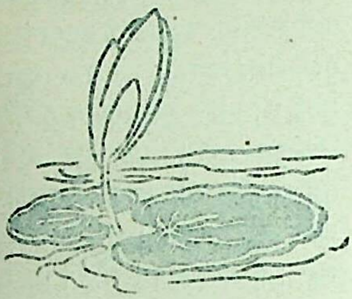

१. कर्मयोगीका पहला व्रत है—पद्मव्रत। मैली और चिपकनी मिट्टीसे पैदा होता है—पद्म। गलेतक डूबा रहता है पानीमें। अपने पत्तेपर पड़े हुए जल-बिन्दुओंको मोती बना-बनाकर जलको ही लौटा देता है। वह कीचड़के सौन्दर्यको अभिव्यक्त करता है। अपनी शोभासे जलको मुसकान देता है। सहृदयोंके हृदयको आनन्द देता है। अपने पास आनेवाले-को प्रसन्न करता है। शंकरके चरणोंमें समर्पित होता है अथवा अपने कारण सरोवरमें ही लीन हो जाता है। धन्य है कमल और धन्य है कर्मयोगी।

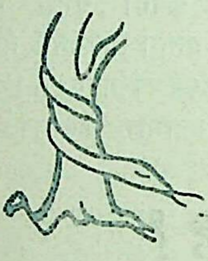

२. कर्मयोगीका दूसरा व्रत है—चन्दनव्रत। बार-बार पत्थरपर घिसा जाता है चन्दन। अन्तिम कणतक वह अपना सौरभ नहीं छोड़ता। शीत ही रहता है वह। वह स्वयं पावन है, दूसरोंकी हृदय-वेदना अथवा शिरो-वेदनाको मिटा देता है। विषादको दूर करता है। भालकी शोभा बढ़ाता है अथवा विषाद (विषभक्षी) भालचन्द्र भगवान् शंकरकी विषवेदना दूर करता है। चन्दन अपने अस्तित्वको मिटाकर भी पर-पीड़ाको पी जाता है। क्या यह चन्दन जीवनका कोई गूढ़तम रहस्य प्रकट करता है ? यही है कर्म-योगी, यही है चन्दन।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चार व्रत

भवन्सकॉलेज, बम्बई

३. कर्मयोगीका तीसरा व्रत है—इक्षुदण्डव्रत। इक्षुदण्ड अर्थात् गन्ना। चाकूसे कटकर, चक्रसे चूर-चूर होकर और कोल्हूमें पीड़ित होकर, एक-एक गाँठ और पर्व टूट जानेपर भी वह अपना रस देनेमें कृपण नहीं होता। उसका नित्य व्रत है—प्यासेको रस देना। पात्रापात्रका विचार भी तो नहीं करता। रसकी वर्षा और दूसरोंको तृप्तिदान—यही उसका जीवन-व्रत है। धन्य है वह गन्ना और धन्य है वह कर्मयोगी !

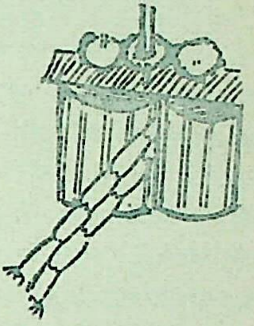

४. कर्मयोगीका चौथा व्रत है—हेमव्रत। हेम, सोना आगमें डाला गया। दाहक रसोंमें डुबोया गया, टुकड़े-टुकड़े किया गया। हथौड़ेसे पीटा गया, सुनारने फूँक-फूँककर असह्य ज्वालामें जलाया, परन्तु वह प्रत्येक दाहमें डूबने-कटनेमें, फूत्कार और ज्वालामें अधिक-अधिक विशुद्ध हुआ, चमका और किसी सौभाग्य-वतीका आभूषण बना। प्रेमकी पहचान अँगूठी बना। विरहियोंके हृदयका सहारा बना। अलंकार बना। भगवान्के कानका कुण्डल, सिरका मुकुट। धन्य है वह हेम, धन्य है कर्मयोगी !

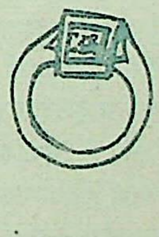

क्या आपको इन चारों व्रतोंकी ध्वनियाँ समझनी पड़ेंगी ? ●

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हमारा जीवन-दर्शन

स्वामी श्री स्वरूपानन्द जी महाराज

सुख और शान्तिकी खोजका ही नाम जीवन है। किसी भी देश या कालका प्राणी क्यों न हो और वह चाहे विहित या निषिद्ध किसी भी प्रकारके कर्ममें संलग्न हो, उसका उद्देश्य सर्वत्र सुख-शान्तिकी प्राप्ति ही है। मनुष्यकी समस्त प्रवृत्तियोंका मूल भी यही है, निष्फल कर्ममें कोई भी समझदार प्राणी प्रवृत्त नहीं होता। फल ही सबका इष्ट है, इच्छितको ही इष्ट कहते हैं और इच्छा सुखका ही अनुगमन करती है। अतएव सुख ही सबका इष्ट एवं फल है। कर्म आयास रूप है और आयास दुःखात्मक है। इसलिए प्राणीकी उसमें सहज प्रवृत्ति नहीं होती, किन्तु जब उसे यह भान होता है कि कर्म सुखका साधन है तब वह उसमें प्रवृत्त होता है। सुख साध्य और कर्म साधन है। यह नियम है कि प्रवृत्तिका विषय फल न होकर फलकी प्राप्तिका साधन होता है; क्योंकि फल सिद्ध है। जिसको जिस प्रकारके कर्मोंमें इष्ट-साधनताका निश्चय हो जाता है वह उसी प्रकारके कर्मोंमें प्रवृत्त होता है। लक्ष्य या फलमें किसी प्रकारका विवाद नहीं, विवाद केवल इष्ट-साधनताके सम्बन्धमें ही हुआ करता है।

यह भी निश्चित है कि सीमित या अनित्य सुख प्राणीका लक्ष्य नहीं बल्कि नित्यसुख ही लक्ष्य है। पशु, पुत्र और स्वर्गादिकी इच्छासे कर्मोंका अनुष्ठान करनेवालोंका भी उद्देश्य पशु, पुत्र और स्वर्गादि न होकर उनकी प्राप्तिसे उत्पन्न होनेवाला सुख ही होता है। अतएव फल वस्तुतः सुख ही है ये सब सीमित सुख जिन परमानन्द सुधासिन्धु भगवान्के तुषार-बिन्दुके समान हैं वे समस्त प्राणियोंके परम प्रेमास्पद सर्वान्तरात्मा प्रभु विश्व-फल हैं।

मनोविकारों और सामान्य सांसारिक प्राणियोंका अन्धानुकरण छोड़कर देवदुर्लभ मानव-शरीरकी सार्थकताके लिए हमें उन्हीं अनन्त और नित्य विश्वफल भगवान्की प्राप्तिके उपायपर विचार करना चाहिए। इसके लिए हमें सभी प्राणी, पदार्थों तथा उनके साथ अपने सम्बन्धोंकी समीक्षा करनी पड़ेगी और देखना होगा कि वस्तुतः प्रिय क्या है और अप्रिय क्या है? यथार्थ निष्कर्षतक पहुँचनेके

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लिए विचारोंको मनोविकारोंसे निर्लिप्त और सूक्ष्म बनाना आवश्यक होता है। इसमें मन और इन्द्रियोंका निग्रह तथा चित्तके एकाग्रताकी भी आवश्यकता पड़ती है।

यह नियम है कि उच्चकोटिकी अनुभूति उच्चस्तरके अन्तःकरणसे ही प्राप्त की जा सकती है। निम्नस्तरके अन्तःकरणके रहते अतुलनीय ऐश्वर्य भी जीवको सुखी नहीं बना सकते। इसीलिए सांसारिक भोगों और आर्थिक समृद्धिसे भी वही कुछ लाभ उठा सकता है जिसने उसको धर्मानुकूल वेद्य उपायोंसे अर्जित किया हो तथा जिसके उपयोगका प्रकार औचित्यकी सीमाका अतिक्रमण न करता हो। यह माना जाता है कि जब मनुष्य सत्फलकी प्राप्तिके लिए सत्कर्मोंका अनुष्ठान करता है तब उसके उन कर्मोंके द्वारा अदृष्टकी उत्पत्तिके साथ उसके फलका भोग करनेके लिए चित्त-शुद्धि भी आवश्यक होती है।

जब कर्मोंके सीमित और अनित्य फलके लिए भी चित्त-शुद्धि अनिवार्य हो जाती है तब असीमित और नित्य फलके लिए उसकी आवश्यकता सुतरां है।

भगवत्प्राप्तिके लिए अपेक्षित साधन अन्तःकरणकी पापवासना-राहित्य-रूप निर्मलता और एकाग्रताका सम्पादन करनेके लिए यथाधिकार कर्म एवं उपासनाका अनुष्ठान अत्यावश्य है।

कुछ लोगोंके मनमें चित्त-शुद्धिके सम्बन्धमें विप्रतिपत्ति देखी जाती है वे पूछते हैं कि—"भगवत्प्राप्तिसे चित्तकी शुद्धि होती है या चित्तकी शुद्धिसे भगवत्प्राप्ति ? कहना होगा कि भगवत्प्राप्तिसे ही चित्त-शुद्धि हो सकती है। भगवत्प्राप्तिके बिना चित्तकी शुद्धि नहीं होती। इसीलिए तो हम भगवत्प्राप्तिके लिए प्रयत्न करते हैं। वेदान्त-सिद्धान्तके अनुसार भगवत्स्वरूप-साक्षात्कार ही भगवत्प्राप्ति है। भगवत्साक्षात्कार तत्त्वज्ञानको कहते हैं। उसका मुख्य साधन वेदान्त-विचार ही है। इसलिए चित्त-शुद्धिका प्रयास छोड़कर विचार ही क्यों न किया जाय ?" किन्तु यह ठीक नहीं, बहिर्मुखता और मलिनता तत्वज्ञानमें प्रतिबन्धक है। अन्तःकरणकी पवित्रताके-बिना विचार भी शुद्ध नहीं हो सकता।

जिसकी जिह्वा पित्तदोषसे दूषित हो जाती है उसे गुड़ भी तिक्त प्रतीत होता है। ऐसी स्थितिमें जबतक पित्त-दोषको दूर करके गुड़की स्वाभाविक मधुरताका उसको अनुभव न कराया जाय; चाहे वह अनुभव कुछ क्षणोंके लिए ही क्यों न हो; उसकी तिक्तताकी भ्रान्ति केवल गुड़की मधुरताके विचार-मात्रसे दूर नहीं की जा सकती।

चित्तकी स्वच्छता और समाधान (एकाग्रता) वह अवस्था है जिसमें साधक बाह्य विषयोंसे निरपेक्ष होकर अन्तःसुखका अनुभव कर सकता है। भगवदानन्दकी अनुभूतिसे उसके

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विषयोंमें सुखकी भ्रान्तिरूप वासना-लेशकी भी निवृत्ति हो जाती है।

सार यह है कि इष्ट-साधनके रूपमें हमारे सम्मुख सांसारिक-विषय और भगवद्‌भजन दोनों ही उपस्थित होते हैं, प्रवृत्त होनेके पूर्व हमें उन दोनोंके स्वरूपपर गम्भीरतासे विचार कर लेना चाहिए। विचार करके देखने-पर पता लगता है कि सांसारिक भोग इष्ट तो नहीं ही हैं इष्ट-साधनताका भी उनमें भ्रम ही है। दूसरी ओर भगवान्‌के स्वरूपका ज्ञान या भगवद्-भजन स्वयं इष्ट है; क्योंकि शान्त, स्वच्छ और निर्विषय अन्तःकरणकी ब्रह्माकारताको ज्ञान तथा भगवद्‌धर्मोंसे द्रुत अन्तःकरणकी भगवदाकारताको भक्ति कहते हैं। दोनोंका ही पर्यवसान सच्चिदानन्दघन ब्रह्मके स्वरूपमें होता है।

सुखके लिए विषयोंके आश्रित होना परतन्त्रता और भगवान्‌के आश्रित होना स्वतन्त्रता है। परवशता ही दुःख तथा स्ववशता ही सुखकी कसौटी है।

सर्वं परवशं दुःखं
सर्वमात्मवशं सुखम्।
एतद् विद्यात् समासेन
लक्षणं सुख - दुःखयोः॥

अर्थात् जो कुछ परवश है वह दुःख तथा जो कुछ स्ववश है वही सुख है। सुख-दुःखका संक्षेपमें यही लक्षण समझना चाहिए।

जीवनकी सफलताके लिए हमें साध्य, साधन और विघ्न इन तीनोंको भली-भाँति समझकर साध्यको सदा दृष्टिमें रखते हुए विघ्नोंसे बचते हुए साधनमें सदा संलग्न रहना चाहिए। स्वयंको पूर्ण समझकर प्रमाद करना अनुचित है। व्यक्तिके रूपमें मनुष्य आजीवन साधक है। सिद्ध तो उसका सहज स्वरूप ही हो सकता है। साध्यके एक होनेपर भी सबकी साधना एक-सी नहीं होती। व्यक्तिकी लौकिक-अलौकिक-योग्यता-रुचि और क्षमताके अनुसार साधन भिन्न-भिन्न हुआ करते हैं। शास्त्रोंके आधारपर अपने अनुरूप साधनका निश्चय करके हमें अपने जीवनके प्रत्येक क्षणका उसके अनु-ष्ठानमें ही उपयोग करना चाहिए। नियमित दिनचर्या, समयका आदर, व्यवहारकी उत्तमता, आहार-शुद्धि, सदाचार, परोपकार और श्रद्धा आध्यात्मिक साधनारूपी भवनकी नींवके समान हैं। आध्यात्मिक साधना लौकिक जीवनकी उपेक्षा नहीं वरन् जीवनकी सर्वांगीण उन्नतिका आधार है। जीवन-सम्बन्धी उपर्युक्त दृष्टिकोणसे भोगोंके प्रति उपादेयता-बुद्धिके हट जानेपर व्यक्तिमें स्वार्थ-परायणता नहीं रह सकती। और जिसके अन्तःकरणसे क्षुद्र स्वार्थ निकल गया उसके जीवनका प्रत्येक क्षण उसकी क्षमता और देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धिकी चेष्टा लोककल्याणकारी बन जाती है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विषय महाविष-निवृत्ति

पण्डित श्री ओङ्कारदत्तजी शास्त्री

★

वेधा द्वेधा भ्रमं चक्रे
कान्तासु कनकेषु च।
तासु तेष्वप्यनासक्तो
साक्षाद् भर्गो नराकृतिः॥

कान्ता एवं कनकके रूपमें दो प्रकारका जाल विधाताने वनाया है। इन दोनोंसे जो निकल गया वह नरके आकारमें साक्षात् शंकर ही है।

कहते हैं एकवार स्वामी रामतीर्थ किसी पण्डितके साथ व्रजमण्डल-मथुरामें दर्शनको आये। वहाँ उन्होंने भगवान् भोलेनाथकी एक दिगम्वर प्रतिमाके दर्शन किये। उस प्रतिमाका एक हाथ रसनेन्द्रिय एवं एक हाथ जननेन्द्रियको पकड़े हुए था। यह देखकर स्वामी रामतीर्थने अपने साथीसे प्रश्न किया—'यह अश्लील दृश्य दिखानेका क्या अभिप्राय है?' उन्होंने कहा—'यह अश्लील नहीं है। इस दृश्यके द्वारा भगवान् यह शिक्षा देते हैं कि जो पुरुष इन दोनों इन्द्रियोंको अपने अधीन रखता है वह मेरे ही समान है।' यह सुनकर स्वामी राम मूर्च्छित होकर गिर पड़े। उन्हें अपनी दुर्दशापर ग्लानि हो रही थी कि इस प्रकारका पौरुष हममें कहाँ है। आजका संसार रूप एवं रुपयाके चक्करमें वेचैन होकर भटक रहा है। क्या आसक्त—क्या विरक्त कोई इसके जालसे मुक्त नहीं। कुछ महापुरुष इस द्रव्यके क्रव्यादसे तो अपना पिण्ड छुड़ा भी लेते हैं; किन्तु यह रूपवती महामाया तो उन्हें भी ठगे विना नहीं रहती। **"यया पुंसां मतिर्हृता"** विधाताने इसकी वनावट ही ऐसी विचित्र कर डाली कि देखते ही पुरुषोंकी शेमुषीको इसने हरण कर लिया।

हृषीकेशमें एक अनुभवी वृद्ध सन्त रहते थे। एकवार सब महात्मा मिलकर उनके पास गये और कहा—'महाराज! कृपया कुछ अपना अनुभव सुनाइये।' उन्होंने कहा—'भाई! मेरा तो यही अनुभव है कि कोई हृषीकेशसे हरिद्वारतककी भूमिको स्वर्णसे पाट दे तो भी उसे देखकर मेरे मनमें किञ्चित् भी लोभ नहीं होगा; किन्तु तरुणी स्त्रियोंके मध्यमें रहकर मैं निर्विकार रह सकूँगा, इसमें मुझे सन्देह है।'

श्री लक्ष्मण जी साक्षात् शेषके अवतार थे, किन्तु उन्होंने कभी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्री जानकी जी के मुखपर दृष्टि नहीं डाली। चरणोंसे ऊपर उनकी दृष्टि उठती ही नहीं थी। भगवान् रामने पम्पासरमें उनसे केयूर और कुण्डलकी पहचान करायी तो उन्होंने साफ कह दिया—

"नाहं जानामि केयूरे
नाहं जानामि कुण्डले।
नूपुरावेव जानामि
नित्यं पादाभिवन्दनात्॥"

'मैं केयूर और कुण्डलको क्या जानूँ। मैं तो चरणोंमें प्रणाम करनेवाला सेवक केवल नूपुरोंको ही पहचानता हूँ। आजकलके लोग अपनी असङ्गता-के अभिमानमें जो स्वच्छन्द आचरण करते हैं, उन्हें इस दृष्टान्तसे कुछ सीखना चाहिए।

संसार तव निस्तार
पदवी न दवीयसी।
अन्तरा दुस्तरा नस्यु-
र्यदिरे मदिरेक्षणा॥

कोई साधक संसारको ललकार-कर कहता है—'अरे संसार! तुझे पार करना कौन बड़ी बात है; यदि बीचमें भँवरके समान अटकानेवाली ये मदिरेक्षणा प्रमदा न हों तो।'

कबीर बाबा तो इनकी भस्मसे भी सबको सावधान करते हैं—

'जहाँ जलाई सुन्दरी
तहँ त्रिन जाहु कबीर।'
'मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा
न विविक्तासनो भवेत्।'

एकान्तमें अपनी माता, बहन एवं पुत्रीके साथ भी न रहे।

शास्त्रोंमें ऐसे वचन निन्दापरक नहीं हैं। ये तो विषयासक्तिकी कटुता दिखानेके लिए एवं साधकोंको सावधान करनेके लिए हैं, अस्तु; अब प्रकृतका अनुसरण करें। अच्छा—तो अब विषयमें रूप ही एकमात्र सर्वाधिक बाधक प्रतीत होनेसे उसीके बचावके लिए देखे-सुने कुछ साधन प्रस्तुत किये जाते हैं। फिर शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध भी तो उसीके अन्तर्गत हैं। शब्दादिकोंके लिए भी ये साधन सुतरां उपयोगमें लाये जा सकते हैं।

१. विषयका संदर्शन—ध्यानसे दर्शन न करे। सामान्य दृष्टि पड़ते ही सावधान हो जाय तथा उसमें महत्त्व-बुद्धि एवं गुणका आरोप भी न करे।

२. विषयको भगवद्रूप समझकर मन ही मन प्रणाम कर ले। रूपका दर्शन चाहे बाहर हो चाहे भीतर दोनोंमें समान ही बात है।

३. प्राणायाम करनेसे भी मनकी चञ्चलता मिट जाती है, क्योंकि प्राणसे ही सब चेष्टा होती है। प्राणके बिना मन कुछ नहीं कर सकता—"वायुः सर्वमिदं जगत्।"

४. द्वेष, भय, शंकासे भी विषय अधिक बलवान् बनकर साधकको त्रास पहुँचाता है। जैसे किसी साधकने अपने गुरुसे ध्यानकी बात पूछी तो गुरुजीने उसका निरूपण करते हुए

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यह भी कह दिया—'देखो, यह सब करते समय बन्दरका ध्यान मत करना।' अब बेचारा साधक जब-जब ध्यानके लिए बैठता तब-तब हठात् उसे बन्दरका ध्यान ही होता। अपने ध्येयका नहीं। वह उसे हटानेकी कोशिश करता तो वह अधिकाधिक बल पकड़ता। अतः द्वेषात्मक वृत्ति एवं उसीके अवान्तररूप घृणा, शंका, भय ये सब अपने लक्ष्यसे साधकको गिराते ही हैं। अतः इनसे सावधान रहे।

५. अपने अङ्गोंकी ओर भी विशेष ध्यानसे कभी अनावश्यक न देखे। विशेष साज-सज्जासे दूर रहे। साधारण वेश रखे। तैल-साबुनका हो सके तो सर्वथा त्याग ही अच्छा। नहीं तो ओषधिके समान अत्यावश्यक ही प्रयोग करे—"**नाकामी मण्डनप्रियः।**" मण्डनसे कामवासना बढ़ती हैं।

६. मन विशेष चञ्चलता करे तो स्वयं साधक अपने मनसे पूछे कि विषयोंको त्यागकर तो भजन करने चला, अब क्या फिर भोगना चाहता है? यदि स्वीकार है तो नरकका द्वार भी खुला है, यदि नहीं? तो व्यर्थ क्यों सिर मारता है।

७. जैसे दमनीय अश्व अधिक खींचनेसे भी बिगड़ता है तथा अधिक ढीला छोड़ना भी बुरा है, ऐसे ही मनकी भी दशा है। कभी-कभी अधिक नियन्त्रणसे भी अधिक चञ्चल होता है। ऐसी दशामें मनको कुछ शिथिल भी कर देना हितकर होता है, शिथिल करनेपर पतनावस्थाकी ओर जाता दीखे तो पुनः खींचकर शासनमें ले ले।

८. जहाँ चित्तका अधिक आकर्षण होता हो, ऐसे दृश्यमें कभी भाग न ले। जिसे देखकर निर्मलताकी जगह हर्ष-रजोगुण आवे—भोगोन्मुखता बढ़े, उसे सदाके लिए त्याग दे। विषयका पुनः-पुनः दर्शन, चिन्तन, अनुसन्धान करनेसे ही विषय सत्ता, स्फूर्ति, बल पाकर साधकको खींचते हैं। आसक्तिकी वृद्धिका भी यही कारण है।

"ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते। सङ्गात्संजायते कामः........'

अतः इनका चिन्तनादि छोड़कर अपने लक्ष्यका ही चिन्तन करता रहे। राग, द्वेष, भय, घृणा, शंका आदि भावोंसे चिन्तन होता है, उस चिन्तनसे विषयका बल बढ़ता है। विषयसे रस खींचनेकी प्रवृत्तिको अभ्यास द्वारा दूर करे।

९. मनको या तो प्रकृतिका कार्य समझे, या भगवान्की वस्तु। मनसे ममत्व हटाये बिना, उसका नियन्त्रण असम्भव है। जिसको हम अपना समझते हैं, उसकी अधिक चिन्ता होती है। अतः मनमें क्या आया, क्या गया इसका ही अनुसन्धान होता रहता

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है। सद्भावना आनेपर सुख एवं विपरीत आनेपर दुःख तथा उससे द्वेष भी होता है। अतः जो साधक मनको अपना न मानकर विक्रीत पशु-की तरह प्रभुका स्वीकार कर लेता है, वह शनैः शनैः निश्चिन्त हो जाता है। भले ही प्रभु इसमें अच्छी वस्तु भरें या बुरी, हम तो उन्हींकी ओर देखेंगे—मनकी ओर नहीं। इस प्रकार ममत्व हटते ही उपेक्षा हो जानेसे मन स्वतः स्वस्थ हो जाता है।

सफलताका रहस्य

मनुष्यका विश्वासी होना ही पर्याप्त नहीं। उसका विश्वासपात्र होना भी आवश्यक है। अर्थात् लोग उसपर भी विश्वास करें। पारस्परिक विश्वासके बिना सामाजिक व्यवहार-की नींव पक्की नहीं होती। सत्य-वादी, ईमानदार, सरल, मृदुस्वभाव, दृढ़, गम्भीर और सेवा-परायण मनुष्य लोगोंका विश्वास-भाजन बनता है। 'मुझपर विश्वास करो' यह प्रार्थना करने या आज्ञा देनेसे किसी पर कोई विश्वास नहीं करता। एक पुत्रने अपने पितासे कहाः—'पिता जी! आपका मन इतना चञ्चल और डाँवाडोल रहता है कि आप मुझे कुछ देंगे, इसपर विश्वास नहीं होता।'

अभिप्राय यह है कि विश्वास प्राप्त करनेके लिए छिछला-उथला स्वभाव त्याग देना चाहिए। जब तक आप लोगोंका विश्वास नहीं पायेंगे, संसारके किसी काममें सफल नहीं हो सकते।

१०. विषयके रूपमें हमारा मन ही बाहर चमक रहा है। मनसे भिन्न विषय नामकी कोई वस्तु है ही नहीं। फिर अपने मनके बनाये, मनके ही रूपान्तर विषयमें भटकनेकी क्या आवश्यकता है—'वितथमनोविलास-मृतमित्यवयन्त्यबुधाः।' मिथ्या मनके विलास संसारको मूर्ख लोग सत्य समझकर पकड़ रहे हैं।

११. द्रष्टासे दृश्य कभी बलवान् हो ही नहीं सकता, यह विचारकर अधीरता न आने दे। क्या संसारका कोई विषय हमसे बलवान् हो सकता है; क्योंकि वह तो हमारा ही दृश्य है। मन भी हमारा दृश्य है, भले ही वह कितनी ही उछल-कूद करे, अन्ततः उसे एक दिन हमारे अधीन होना ही पड़ेगा। हमसे भिन्न उसकी सत्ता ही कहाँ है—"चित्तं तु चिद् विजानीयात्।" क्या तरंग जलका कुछ बिगाड़ सकती है।

१२. स्त्रियोंके साथ कभी भूलकर भी हास-परिहास न करे। हास शृङ्गारका पूर्वरूप है। जो किञ्चिन्मात्र भी हास करता है वह विषयके गर्तमें अपनेको गिरा देता है 'हसता लभ्यते नारी।" तथा अनावश्यक व्यवहार

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भी न करे। स्त्रियोंको भी पुरुषोंसे इसी प्रकार सावधान रहना चाहिए।

१३. विषयमें चित्त जानेपर उसके पूर्वापर-रूपका विचार करे। पहले यह वस्तु एक बिन्दुके रूपमें थी, उससे भी पहले तृणादिके रूपमें। अन्तमें भी बिखरकर भस्म बनकर मिट्टी बन जायगी। तो फिर बीचमें चमकनेवाली वस्तुको सत्य समझकर पानेकी इच्छा, तथा उससे अपनेको सुखी बनानेकी इच्छा ऐसी है जैसे ओसके कणको मोती मानकर उसे कोई मालामें पिरोना चाहे। अरे! बीचमें भी तो क्षण-क्षणमें परिवर्तन हो रहा है। जो रूप अभी देखा, एक घड़ी पीछे, एक दिन पीछे उसमें उतना आकर्षण कहाँ दीखता है। अतः यह सब मिथ्या है। असली तो वही सुख है जो कभी बदलता नहीं—"यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति।"

१४. जैसी अहंकृति होती है, उसीके अनुरूप कृति भी होती है। अतः अपनेको मायाका किंकर कभी न समझे। यही समझे—'मैं तो प्रभुका दास हूँ।' इस प्रकार अशुद्ध मायिक अहंकारको त्यागकर शुद्ध सात्त्विक अहंकार दृढ़ करे। चित्त भी रावण है—सबको रुलाता है और दस इन्द्रियोंके द्वारा विषयको भोगनेसे दशानन भी है, अतः 'दासोऽहं कोशलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।' हनुमान्‌जीकी तरह 'दासोऽहं' की दृढ़ भावना करे। 'न रावणसहस्रं मे युद्धे प्रतिबलं भवेत्।' एक तो क्या सहस्र-सहस्र चित्तरूप रावण भी मुझे पराजित नहीं कर सकते।

'पीपलका पत्ता'

• ब्रह्मलीन श्री ब्रह्मप्रकाश जी महाराजके मुखारविन्दसे

पीपलका एक पत्ता धरती पर गिरा। बादमें पानी बरस गया। सूखने पर पत्तेमें केवल जाली-ही-जाली रह गयी। पत्तेकी हरियाली और मसाला गायब। छिद्र-ही-छिद्र। एक नन्हा-सा कीड़ा उसपर चढ़ गया। वह एक छिद्रमें फँसे और निकले, फिर दूसरेमें फँसे दीर्घ काल तक बेचारा भटकता रहा। बादमें ईश्वरकृपासे उसे सद्बुद्धि आयी और एक तगड़ी नसका सहारा लेकर वह वृन्तके पास पहुँच गया और मुक्त हो गया।

यह संसार पीपलका पत्ता है। वासना-जाल ही इसके छिद्र हैं। जो जीवाणु इसमें फँस जाते हैं—उनका निकलना कठिन है। पतली नस रूपी सन्तका सहारा लेकर जड़ अर्थात् ईश्वर तक पहुँच जाओ, फिर ब्रह्माभेद-रूप मुक्तिकी प्राप्ति हो जाती है। •

१५. 'हे प्रभो! मेरा मन कामना

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एवं कर्मसे पराभूत हैं। बुद्धि काम नहीं देती, अत्यन्त मन्द है। इन्द्रियाँ बड़ी प्रबल हैं, वे हठात् मेरे मनको विषयके दलदलमें फँसा देती हैं। मैं विवश एवं आश्रयहीन होकर आपके शरण हूँ। आप ही अब एकमात्र मेरे रक्षणकर्ता एवं पोषक हैं।' इस प्रकार कातर एवं शुद्ध भावसे अक्रूर जीकी तरह नित्य निरन्तर प्रार्थना करता रहे तो साधकका काम अनायास ही हो जाता है। श्रद्धा-विश्वासकी तो इसमें परमावश्यकता है ही।

१६. जब भोक्ता एवं भोग्य दोनोंपर चोट पड़ती है तभी विषयसे छुटकारा होता है, नहीं तो इनमें एकको सत्य मानकर दूसरेको मिथ्या माने तो सत्य माना हुआ मिथ्या माने हुएको भी जीवित एवं सत्य कर लेता है; क्योंकि ये दोनों ही सापेक्ष हैं—एक दूसरेके आश्रित हैं।

अतः विचार करे कि जैसे भोग्य-विषय परिवर्तनशील होनेसे मिथ्या है, ऐसे ही भोक्तापनका अहंकार भी मिथ्या है। मैं भोक्ता नहीं हूँ, न कर्ता ही हूँ। देखते-सुनते-सूँघते-छूते एवं खाते-पीते समय अपने अकर्तृत्व अभोक्तृत्व स्वरूपका ही विचार करे। इन्द्रियाँ प्रकृतिवश विषयोंमें जाकर उनका सेवन कर रही हैं। ऐसे अपनी असंगताको दृढ़ करे। आसक्तिपूर्वक इन्द्रियोंकी प्रवृत्तिको न करे, अन्यथा दम्भाचार होनेसे पतित हो जायगा।

१७. हरिनामका निरन्तर जप करता रहे। जोर-जोरसे संकीर्तन करे तो बहुत अच्छा है। इसमें एक रहस्यकी बात है—मनकी चेष्टा प्राण-शक्तिके बिना असंभव है। जबतक पुरुष उच्चस्वरसे बोलता है, तबतक प्राण निरोध स्वतः होता रहता है। उस समय प्राणका वाणीमें हवन—समर्पण होता रहता है। श्वास लेते हुए निरन्तर जोर-जोरसे बोल नहीं सकता; क्योंकि उस समय वाणीका प्राणमें हवन करता है—**'यावद्वै पुरुषो-भाषते न तावत्प्राणितुं शक्नोति प्राणं तदा वाचि जुहोति, यावद्वै पुरुषः प्राणिति न तावद्भाषितुं शक्नोति वाचं तदा प्राणे जुहोति'** (कौषीतकिब्राह्मणोपनिषत्) इसके लिए सभी शब्दोंका उपयोग नहीं किया जा सकता। भगवन्नाम तो अचिन्त्य शक्तिशाली चिन्मय मधुराति-मधुर है। उसकी कृपाके सामने तो असम्भव भी सम्भव हो जाता है। कोई दूसरा नाम उसकी समता कर ही नहीं सकता। वह तो असमोर्ध्वप्रभाव-शाली एवं चमत्कारकारी है। जितना कल्याण उसके द्वारा सम्भव है, उतना और किसीसे नहीं। दूसरे उसके उच्चारणके साथ-साथ नामी भी तो हृदयमें आकर विराजमान हो जाता है; जिसके सामने संसारकी सत्ता शून्य हो जाती है एवं जिसके रोमकी शोभाकी एक किरणमें त्रिभुवनकी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शुभकामनाओं के साथ

मगनलाल ड्रेसवाला

[भारतके अग्रणी वेशभूषाकार]

लग्नादि शुभ अवसर पर बनारसी, जरी भरत और सिल्कन साड़ियों वगैरहके लिए।

गरबा, नृत्य, नाटिका, स्कूल-गेघरींग वगैरह कार्यक्रम पर आवश्यक सब प्रकारकी वेशभूषाके लिए।

कापड़ विभाग :
७३–७७ भूलेश्वर रोड,
बम्बई-२

फोन :
३१००७९

ड्रेस विभाग :
जय हिन्द एस्टेट नं० १
भूलेश्वर रोड
बम्बई-२

BRIGHT BARS

Fore bigger Diameter & Longer Length-80 mm. and over

Mfgrs :
Akhandanand Engineering & Trading Co.

Dattamandir Road, Bhandup
BOMBAY-78
Phone : 581919

Selling Agents :
Mangaldas Ranchhoddas & Co.

Giriraj, BOMBAY-9
Phone : 321884

ALSO CONTACT FOR OTHER MILD STEEL REQUIREMENTS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

For all Types

OF

Electric wires and cables

Raval & co.

LARGEST STOCKISTS OF

I.C.C. PARAMITE+C.C.I. TROPODUR+L.T. & H.T.
WIRES AND CABLES TRAILING FLEXIBLES &
CONTROL CABLES A SPECIALITY

HEAD OFFICE :

SHREEJI BHUVAN, LOHAR CHAWL
POST BOX No. 2279
BOMBAY-2

PHONE 23720, 20233, 28426
Grams : Godspeed

Branch Office :

12—B, LOWER CHITPUR ROAD,
CALCUTTA--1

Phone : 345651

Grams : YOURCHOICE

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शोभा डूब जाती है, ऐसे एकमात्र ऐश्वर्य माधुर्यके केन्द्र प्रभुको उनका नाम ही तो खींचनेमें समर्थ है—

**'रामनाम जब सुमिरन लागा।
कहत कबीर विषय सब भागा॥'**

अतः हरिनामके साथ सामान्य नामकी तुलना सबसे बड़ी मूर्खता है।

१८. किसी गम्भीर चिन्तनमें या कवितामें मनको लगा देनेसे भी विषयका आकर्षण समाप्त हो जाता है।

१९. रूप एवं संकल्पकी रेखा चित्तमें न बनने दे। यदि विवशतासे बन जाय तो उसकी ओर ध्यान न दे, देखे नहीं। जैसे कोई मेहमान—(मेहके समान जिसका मान किया जाय) अपने घर-पर आ जाय तो हम उसकी ओर न देखें, न बातचीत करें, न आसन दें तो वह निराश होकर स्वतः चला जाता है; ऐसे ही संकल्पके द्वारा या आकृतिके द्वारा कोई विषय हमारे चित्तमें आ ही जाय तो उसकी ओर ध्यान नहीं देना चाहिए। अपने लक्ष्यमें ही लगे रहना चाहिए। न उससे द्वेष ही करे कि ऐसा चित्तमें क्यों आया। इस प्रकार उपेक्षित होनेसे स्वतः उसकी निवृत्ति हो जाती है। बात यह है कि विषय भी प्राकृत है एवं रागद्वेषमयी वृत्ति भी प्राकृत है, तो जैसे पङ्कसे पङ्कका प्रक्षालन असम्भव है, उसी प्रकार प्राकृत वृत्तिसे-प्राकृत विषय पर विजय पाना भी असम्भव है। अतः उसके निराकरणके लिए या तो भगवदाकारवृत्ति अपेक्षित है या रागद्वेषविहीनवृत्ति। उसे भले ही आप उपेक्षात्मकवृत्ति कह लें। ब्रह्माकारवृत्ति कहें तो भी कोई दोष नहीं है।

२०. जिनको भगवान्‌का ध्यान न आता हो तथा रूपासक्ति अधिक हो, उन्हें अपने हृदयमें आकाशका ध्यान करना चाहिए। नेत्र खोलकर भी कर सकते हैं। चलते-फिरते किसीसे बात करते हुए भी व्यक्तिकी ओर न देखकर आकाशकी ही ओर देखें। आकाश तो व्यक्तिके दायें-बायें ऊपर भी रहेगा, अतः केवल ऊपर देखनेका प्रयास भी नहीं है। मुझे एक महात्माने बताया था कि इस प्रकार करनेसे मनसे आकृति एवं संकल्प निकल जायेंगे। तदनन्तर बड़ा आनन्द प्राप्त होता है। आकाशमें रूप काटनेकी बड़ी शक्ति है; क्योंकि पहले परमात्मासे आकाश ही उत्पन्न हुआ **'एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः'** ....इससे ही आगे वायु-अग्नि-जल-भूमि उत्पन्न हुए। अतः यही ईश्वरका प्रथम निराकार सर्ग है। इससे चित्त शुद्ध होकर भजनके योग्य बनता है।

२१. सनकादिकुमारोंने अपने पितासे प्रश्नका उत्तर न पाकर उन्हींके ध्यानसे प्रकट सम्मुख आये हुए हंस भगवान्‌से यह प्रश्न किया कि—'प्रभो! विषयोंमें चित्त प्रविष्ट होता है एवं चित्तमें विषय प्रविष्ट होते हैं, अतः

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भवसे तरनेकी इच्छावाला इन दोनोंको एक दूसरेसे अलग कैसे करे ?' तब हंस भगवान्ने कहा—'देखो ये दोनों ही जीवकी उपाधियाँ हैं। अतः जीव मुझसे अभिन्न अपनेको समझकर दोनों-का त्याग कर दे।' जैसे आकाशको घटकी उपाधिसे कुछ प्रयोजन नहीं। घट रहे या जाय; उसका क्या बिग-ड़ता है। आकाश तो घटके पहले भी, पीछे भी तथा वर्तमानकालमें भी सदैव रहता है। इस प्रकार आत्मनिष्ठाको धारण करनेसे मनके साथ-साथ विषया-सक्ति भी शान्त हो जाती है।

२२. आहारके ही सूक्ष्मांशसे मन बनता है तथा जननेन्द्रियपर भी आहारका बहुत प्रभाव पड़ता है। यदि आहार शुद्ध हो तो मन एवं इन्द्रियाँ भी शुद्ध रहती हैं तथा साधक विषया-सक्तिकी विपत्तिसे बच जाता है—**'आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्व-शुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः'** (छा०) चित्त शुद्ध होनेपर ही भगवत्स्मृति सम्भव है, जिससे अहंकार, संशय आदि सभी ग्रन्थियाँ छिन्न-भिन्न हो जाती हैं। अतः साधकको आहारके विषयमें बहुत सावधान रहनेकी आवश्यकता है। प्रधानतया आहारके दोष ये हैं—

अभक्ष्य क्षण, भअन्यायोपार्जितता, अपवित्रता, एवं अपथ्यता।

अभक्ष्य—जैसे—मांस, मछली, अण्डे, शराब, प्याज, लहसुन, शलजम आदि। इनके सेवनसे रजोगुण एवं तमो-गुणकी वृद्धि होती है ये सब नस-नाड़ियोंमें उत्तेजना करके विषया-सक्तिको बढ़ाते एवं अनाचारमें हठात् प्रवृत्त करते हैं, तथा हिंसाके द्वारा पापकी प्राप्ति भी अनिवार्य रूपसे होती है। इसीसे मात्राधिक्य तो सर्वथा वर्जनीय है।

अन्यायोपार्जित—चोरी, घूस-खोरी, धोखा, बेईमानी, ठगी आदि अनुचित परपीड़ाप्रद साधनोंसे प्राप्त धन, प्रथम तो कुछ वर्ष बढ़ता है—पीछे **'समूलस्तु विनश्यति'** मूलसहित नष्ट हो जाता है। इन साधनोंसे प्राप्त धन, साधकको तो क्या पामर प्राणीको भी पीड़ा ही पहुँचाता है; किन्तु आसक्ति एवं अज्ञानके कारण वे ऐसे धन्धेको छोड़नेमें हिचकते हैं। एकबार वृन्दावनमें श्री गोविन्ददेव जीके मन्दिरमें एक वेश्याने अज्ञातरूपसे भोग लग-वाया। उसे पानेपर महात्माओंके मनमें कामविकार होने लगा। सबने पता लगाया तो घटनाकी सचाई सामने आ गयी। तबसे सब सावधान हो गये। सुनते हैं—भीष्म जैसे बाल-ब्रह्मचारी परमभागवत भी दुर्योधनका अन्न खानेसे सभामें चीरहरण किये जानेपर द्रौपदीकी दुर्दशापर कुछ विचार न कर सके—

'सर्वेषामेव शौचाना—
मर्थशौचं परं स्मृतम्।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

योऽर्थे शुचिः स हि शुचिः
न मृद्वारिशुचिः शुचिः ॥'

जितने प्रकारकी शुद्धियाँ हैं उन सबमें धनकी शुद्धि ही सबसे बड़ी है। जिसका धन शुद्ध है, वही शुद्ध है। केवल दिनभर मिट्टी-पानीसे हाथ-पैर रगड़नेसे कोई शुद्ध थोड़े ही हो सकता है।

अपवित्रता—भोजन बनानेवाला, भोजनकी वस्तु एवं स्थान तथा बनानेवालेका भाव ये तो पवित्र होने ही चाहिए। किन्तु भोजन करनेवाला भी प्रथम स्नान कर चुकने पर भी भोजनके समय कर-चरण एवं मुखका प्रक्षालन करके गोग्रास एवं वलिवैश्वदेवके अनन्तर भगवान्‌को निवेदन करके शुद्ध स्थानमें ही भोजन करे। आदि-अन्तमें आचमन भी करे। ऐसा करनेसे आयु एवं बुद्धिकी वृद्धि होती है, यह मनु आदि स्मृतियोंमें वर्णित हैं। महाभारतमें एक कथा है—एक स्नातक ऋषिकुमार अपनी गुरुपत्नीके आदेशसे गुरुदक्षिणाके रूपमें रानी मदयन्तीके दिव्य कुंण्डल लेने गये। मार्गमें वृषभके रूपमें इन्द्रने कहा—'तुम मेरा गोमय प्राशन कर लो, तुम्हारे गुरुजीने भी किया था।' ब्रह्मचारीने उनकी बात मान ली और फिर जल्दीसे खड़े-खड़े आचमन करके वे राजाके यहाँ पहुँचे। उनका मनोरथ जानकर राजाने अन्तपुरमें जानेकी आज्ञा दी कि—'महाराज! मेरी रानी भीतर हैं, वहाँ जाकर आप उनसे निःशंक माँग लाइये।' भीतर जानेपर उन्होंने वहाँ रानीको नहीं पाया, और बाहर लौट आनेपर राजाको डाँटा—'तुम हमसे छल करते हो। भीतर तो रानी है ही नहीं।' महाराजने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—'देव! मैं छल नहीं करता। मेरी रानी पतिव्रता है। वह अपवित्र पुरुषको दिखायी नहीं देती। प्रतीत होता है, आपमें कोई अपवित्रता है।' ब्रह्मचारीने ध्यान दिया तो मालूम हुआ—'मैंने चलते-चलते खड़े-खड़े जो आचमन किया था, ऐसा तो धर्मशास्त्रमें विधान नहीं है। उसमें तो लिखा है—'बैठकर तीन बार फेनरहित एवं शब्द (सुड़-सुड़)के बिना जो आचमन करता है, वह शुद्ध होता है।' फिरसे उन्होंने विधिपूर्वक आचमन करके भीतर जाकर देखा तो रानीके दर्शन मिले। आजकल जो पाश्चात्य-रोशनीमें डूबकर खड़े-खड़े जूठन खाते एवं बिना आचमन किये जूठे मुख तथा हाथोंसे जो चाहे सो करते रहते हैं उनको इस घटनासे कुछ सीखना चाहिए।

अपथ्यता—जो अपनी प्रकृति, देश तथा परिस्थितिके प्रतिकूल हो, उसे त्याग देना चाहिए। जैसे—साधकको लालमिर्च, मसाले, अधिक तैल,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अधिक मीठा, एवं अधिक स्वादु भोजन अहितकर है। श्रीमद्भगवद्गीतामें वर्णित सात्त्विक आहार हितकर है। यह बात ध्येय है—गरिष्ठ भोजन पूरी तृप्तिसे न करे, नहीं तो अजीर्णके द्वारा पाचनशक्ति विगड़ती है तथा प्रमाद एवं आलस्य बढ़ता है। ब्रह्मचारी एवं यतिको शुद्ध घृतका सेवन विषके समान है; क्योंकि विषयासक्तिमें हठात् प्रवृत्त करता है। ऐसे ही अधिक कफकारी पदार्थ जैसे मीठा, भैंसका दूध, लिसोड़ा, उड़दकी दाल ये नित्य सेवन न करे। करे तो थोड़ी मात्रामें, अपने बलाबलको विचारकर। एक छात्रकी घटना है, उसके पिता आर्यसमाजी थे। उन्होंने उसे १३-१४ वर्षतक घृत नहीं खाने दिया, दूध देते थे। बड़े होनेपर विवाहके समय वह घृत खाने लगा तो कहता था मुझे श्रान्ति कभी नहीं होती। प्रमेहका दोष मैं नहीं जानता। वह खड़े-खड़े छातीके बराबर ऊँची दीवारपर कूदकर चढ़ जाता था। आजकल तो शुद्ध घी दुर्लभ ही हो रहा है। जिनके यहाँ होता हो इन माता-पिताको अपने बालकोंका हित विचारकर यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए। उपनिषद्में भी संन्यासीके लिए आया है—'घृतं विषमिव त्यजेत्।' फिर स्निग्धता भी शरीरको अपेक्षित होनेसे अपनी पाचनशक्तिको विचारकर ओषधिके समान ही इसका प्रयोग करना हितकर होगा। एक प्रसिद्ध हकीम कहते थे—दूध तो कुछ पचता भी है, घी तो केवल नस-नाड़ियोंको चिकना करके मल-मूत्रके साथ निकल जाता है। वाजीकरण ओषधियोंका सेवन कभी न करे। प्रतिदिन अम्लपदार्थ तथा दही भी खाना शुक्रनाशक है। वनस्पति घीका सेवन, जिनके शरीरमें कफ, मेदा या कब्ज हो उनके लिए तो कुछ मात्रामें अनुकूल भी है किन्तु अन्य पुरुषोंके लिए घातक है। वनस्पति घी नेत्रशक्ति, विन्दु एवं अस्थियोंको निर्वल बनाता है। कफादि दोषवाले भी अति मात्रामें सेवन करें तो उन्हें भी इसका कुपरिणाम ज्ञात हो जायगा। एकबार एक प्रसूता स्त्रीको भूलसे शुद्धके स्थानमें अशुद्ध घी सेवन करा दिया, सेवन करते ही उसे मूर्च्छा आ गयी। अन्य उपचार करनेपर चेतना तो लौट आयी किन्तु जीवनभरके लिए उसको नेत्रज्योति नष्ट हो गयी। कोमल प्रवृत्तिवाले इस विषसे सावधान रहें। एक लगभग ८० वर्षके पण्डित हैं, उन्होंने कभी गोघृतको छोड़कर दूसरा घृत सेवन नहीं किया। गोसेवा घरमें होती रहती है उसके फलस्वरूप अवतक उन्हें चश्मा नहीं लगाना पड़ा और दिनभर स्वाध्याय करते रहते हैं। बाजारमें क्रीमके नामसे बिकनेवाला घी भी अशुद्ध ही होता है, व्यापारी लोग उसमें

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अच्छे घृतकी केवल गन्ध डाल देते हैं। छलहीन सच्चे व्यापारी भारतमें विरले ही होंगे। अशुद्ध घृतके अति सेवनसे या मिर्च-मसाले, वाजीकरण ओषधिके सेवनसे नस-नाड़ियोंमें ज्वलनात्मक उत्तेजना होती है। एवं शुद्ध घी तथा विशेष कफकारी पदार्थोंके सेवनसे कण्डूप्रधान उत्तेजना होती है, जो सच्चे साधकके मनमें भी असत् संकल्प उत्पन्न किये बिना नहीं रहती। अपरिचित साधकको तो इसका विवेक करना भी कठिन हो जाता है कि यह उपद्रव मेरे मनका है या भोजनका। अतः साधकोंको इन आहारके दोषोंसे बहुत सावधान रहनेकी आवश्यकता है।

[आचार और आहार देश, काल, व्यक्तिकी प्रकृतिपर निर्भर करते हैं। सब देशमें, सब समय, सब समाजमें अमुक पदार्थ या क्रिया लाभकर या हानिकर ही है, ऐसा नहीं है।

—सम्पादक]

●

पकड़ो प्यारे हाथ

जय आनन्द-मुकुन्द, प्राणप्रियतम, मनमोहन।
हृदयेश्वर, गुणधाम, मधुर, मतवारे सोहन॥
लोचन प्यासे मीन, पपीहा वाणी प्यारे।
मन-चकोर, तन-मोर, रोम मधुकर से सारे॥
मिले-अनमिले एकरस, चाह भरे तलफत रहें।
इन्हें मिलाओ आपमें, क्यों प्रेमी दुःखमें रहें॥

× × ×

मन मुकुन्दके पास, एक अभिलाष लिये है।
आओ जीवननाथ, मिलो यह आश लिये है॥
युग-युगसे क्षण जात, रात तारे गिन कटतीं।
उरमें प्रेम-तरङ्ग न अब अटकाएँ अटतीं॥
अटतीं नहीं 'उमङ्गकी लहरें, उरमें नाथ।
दौड़ो, आओ, मिल रहो, पकड़ो प्यारे हाथ॥

पू० स्हाराज श्री

★

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्रीमद्भागवतमें • और रासलीला

चीर-हरण

श्रीमद्भागवतमें श्री कृष्णके दो चरित्र अभी तक नास्तिकोंके लिए आक्षेपके विषय बने हुए हैं। एक उनका गोपियोंका वस्त्र-हरण और दूसरा शरत्पूर्णिमाकी रात्रिमें गोपियोंके साथ रासलीला।

इन दोनों घटनाओंके समझनेमें हमें अब विवेक-बुद्धिसे काम लेना पड़ेगा, क्योंकि मैं भी स्वामी अखंडानंद जीके प्रवचनके पहले इन घटनाओंके प्रति कई गलत धारणाएँ बनाये बैठा था। श्री कृष्ण भगवान्ने गीतामें स्पष्ट कहा है कि 'मेरे चरित्रको सुनने-समझनेका वह अधिकारी नहीं है जो इन्द्रियविजयी, तपस्वी न हो, मेरा भक्त न हो, सुनना न चाहता हो और दोष लगाता हो।'

इसका अर्थ है कि श्री कृष्णके चरित्र इन्द्रियविजयी, तपस्वीके लिए ही हैं। साधारण मनुष्य न तो उतनी ऊँचाई तक जा सकता है और न सोच ही सकता है, इसलिए उसके मनमें यह चरित्र भ्रम ही उत्पन्न करेगा। पहले हम गोपियों और श्री कृष्णकी स्थितिको जान लें तभी इस विषयमें कुछ समझा जा सकता है। गोपियोंकी स्थितिके बारेमें कहा गया है कि उन्होंने अपने आराध्य श्री कृष्णके लिए देह-गेह, पति-पुत्र, लोक-परलोक, कर्त्तव्य-धर्मका त्याग कर दिया था, उनके मनमें इन कर्म-बंधनके प्रति न रुचि थी और न आसक्ति और जिस भक्तके कर्म-बंधन छूट जाते हैं उसे ही भगवान् स्वीकार करते हैं। इन्हींकी परीक्षा श्री कृष्णने चीर-हरणके रूपमें गोपियोंसे ली और भगवान्ने जब देखा कि इनमें देहासक्ति अब नहीं रह गयी है, तभी उन्होंने गोपियोंको आश्वस्त किया कि उन्हें वे अपने धाममें रमण करनेकी इजाजत देते हैं। दूसरे अर्थमें हम इसे यों कह सकते हैं कि जीवके मनकी सभी वृत्तियोंके निरावरण होनेपर ही भगवान् उसे स्वीकार करते हैं। चीर-हरण यानी वृत्तियोंका निरावरण होना और इसके बाद ही श्री कृष्णने रासलीला की। इसका अर्थ है कि जब भक्तके मनसे सारी वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं, तब उस मनमें स्वयं श्री कृष्ण निवास करने लगते हैं। जैसे शीशेके साफ होनेपर उसमें अपना ही प्रतिबिम्ब दिखायी देने लगता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यह देखा भी गया कि रासलीलामें भगवान् सभी गोपियोंके मनमें उनके आराध्यरूपसे विराजमान थे, प्रतिविम्वित थे और अलौकिक आनन्दका सागर लुटा रहे थे। इस तन्मयतामें कौन ऐसा होगा जो इस असार संसारकी वस्तुओंमें मन लगायेगा। भक्तिका चर्मोत्कर्ष ही गोपी-भाव है। गोपीका अर्थ ही गुप्तभक्ति है। इसलिए गोपियोंने यह कहीं प्रकट नहीं किया कि वे भक्त हैं, या उन्हें उसके वदलेमें भगवान्से कुछ माँगना है। जव कि अन्य वड़े-वड़े भक्तोंने कहीं-न-कहीं इस मर्यादाका खण्डन कर दिया है।

शिवनारायण तिवारी

यों तो भगवान्के जन्म-कर्मकी सभी लीलाएँ दिव्य होती हैं, परन्तु व्रजकी लीला, व्रजमें निकुञ्जलीला और निकुञ्जमें भी केवल रसमयी गोपियों (गुप्तभक्ति) के साथ होनेवाली मधुरलीला तो दिव्यातिदिव्य और सर्वगुह्यतम हैं। यह लीला सर्वसाधारणके सम्मुख प्रकट नहीं है, अन्तरंग लीला है और इसमें प्रवेशका अधिकार केवल श्री गोपीजनोंको ही है। दशम स्कन्धके इक्कीसवें अध्यायमें भगवान्की रूपमाधुरी, वंशीध्वनि और प्रेममयी लीलाएँ देख-सुनकर गोपियाँ मुग्ध हो गयीं। वाईसवें अध्यायमें उसी प्रेमकी पूर्णता प्राप्त करनेके लिए वे साधनामें लग गयीं। और जव भगवान्ने आकर उनकी साधना पूर्ण की, इसीको श्रीमद्भागवतने चीर-हरणका प्रसंग कह दिया।

गोपियाँ चाहती थीं—श्री कृष्णके प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण, श्री कृष्णके साथ इस प्रकार घुल-मिल जाना कि उनका रोम-रोम, मन-प्राण, सम्पूर्ण आत्मा केवल श्री कृष्णमय हो। जव मनुष्यमें पूर्ण आत्मसमर्पणका भाव जागता है तव उसे कण-कणमें भगवान् दिखायी पड़ते हैं और तव वह पूर्ण व्रह्मस्वरूप हो जाता है, उसके अतिरिक्त फिर उसके पास कुछ नहीं रहता। इसी भावको गोपीभाव कहते हैं, जिसे अपने इष्टके अतिरिक्त किसी भी वस्तुकी आकांक्षा न हो, संकल्प न हो।

इसीकी पुष्टिमें श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्धके वाईसवें अध्यायमें श्लोक १६ से २७ तक कदम्वके वृक्षपर वैठे श्री कृष्ण भगवान्ने स्वयं कहा है—'कुमारियो ! तुम्हारी मुस्कान पवित्रता और प्रेमसे भरी है। देखो, जव तुम अपनेको मेरी दासी स्वीकार करती हो और मेरी आज्ञाका पालन करना चाहती हो, तो यहाँ आकर अपने-अपने वस्त्र (समस्त संस्कारोंको) ले लो।' कुमारियाँ ठंडसे ठिठुर रही थीं, काँप रही थीं। भगवान्की ऐसी वात सुनकर वे अपने दोनों हाथसे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गुप्त अंगोंको छिपाकर (वासनाओंको छोड़कर) यमुनाजी (संसार-सागर) से बाहर निकलीं। उस समय ठंड उन्हें बहुत ही सता रही थी। उनके इस शुद्ध भावसे भगवान् बहुत ही प्रसन्न हुए। उनको अपने पास आयी देखकर उन्होंने गोपियोंके वस्त्र (संस्कार) अपने कंधेपर रख लिए और बड़ी प्रसन्नतासे मुस्कराते हुए बोले—'अरी गोपियो! तुमने जो व्रत लिया था, उसे अच्छी तरह निभाया है, इसमें संदेह नहीं। परन्तु इस अवस्थामें वस्त्रहीन होकर तुमने जलमें स्नान किया है (यानी संसारमें मर्यादा नहीं छोड़नी चाहिए) इससे तो जलके अधिष्ठाता देवता वरुणका तथा यमुनाजीका अपराध हुआ है, अतः अब इस दोषकी शांतिके लिए तुम अपने हाथ जोड़कर सिरसे लगाओ और उन्हें झुककर प्रणाम करो, तदनन्तर अपने-अपने वस्त्र (संस्कार) ग्रहण करो।' भगवान् श्री कृष्णकी वात सुनकर उन व्रज-कुमारियोंने ऐसा ही समझा कि वास्तवमें वस्त्रहीन होकर स्नान करनेसे हमारे व्रत (भक्ति)में त्रुटि आ गयी, अतः उसकी निर्विघ्न पूर्तिके लिए उन्होंने समस्त कर्मोंके साक्षी (परमात्मा) श्री कृष्णको नमस्कार किया, क्योंकि उनके नमस्कार करने से ही सारी त्रुटियों और अपराधोंका मार्जन हो जाता है। जब श्री कृष्ण भगवान्ने देखा कि सबकी सब कुमारियाँ मेरी आज्ञाके अनुसार प्रणाम कर रही हैं, तब वे बहुत प्रसन्न हुए। उनके हृदयमें करुणा उमड़ आयी और उन्होंने उनके वस्त्र (संस्कार) दे दिये।

यहाँ यह ध्यान देनेकी बात है कि श्री कृष्णने कुमारियोंसे छलभरी बातें कीं, उनकी लज्जा-संकोच छुड़ाया, हँसी की और उन्हें कठ-पुतलियोंके समान नचाया, यहाँतक कि उनके वस्त्रतक हर लिये, फिर भी वे उनसे रुष्ट नहीं हुईं। उनकी इन चेष्टाओंको दोष नहीं माना, बल्कि अपने प्रियतम के संगसे वे और भी प्रसन्न हुईं। गोपियोंने अपने वस्त्र धारण कर लिये। परन्तु श्री कृष्णने उनके चित्तको इस प्रकार अपने वशमें कर रखा था कि वे वहाँसे एक पग भी न चल सकीं। अपने प्रिय-तमके समागमके लिए सजकर वे उन्हींकी ओर लजीली चितवनसे निहारती रहीं। क्योंकि भक्तका मन तो ईश्वरमें समा जाता है, उसकी स्वयंकी गति नष्ट हो जाती है।

भगवान् श्री कृष्णने जब देखा कि उन कुमारियोंने उनके चरणकमलोंके स्पर्शकी कामनासे ही व्रत धारण किया है और उनके जीवनका यही एक-मात्र संकल्प है, तब गोपियोंके प्रेमके अधीन होकर भगवान्ने कहा—'मेरी परमप्रेयसी कुमारियो! मैं तुम्हारा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यह संकल्प जानता हूँ कि तुम मेरी पूजा करना चाहती हो। मैं तुम्हारी इस अभिलाषाका अनुमोदन करता हूँ, तुम्हारा यह संकल्प सत्य होगा। तुम मेरी पूजा कर सकोगी। जिन्होंने अपना मन और प्राण मुझे समर्पित कर रक्खा है, उनकी कामनाएँ उन्हें सांसारिक भोगोंकी ओर ले जानेमें समर्थ नहीं होतीं, ठीक वैसे ही, जैसे भुने या उबाले हुए बीज फिर अंकुरके रूपमें उगने योग्य नहीं रह जाते। इसलिए कुमारियो! अब तुम अपने-अपने घर लौट जाओ। तुम्हारी साधना सिद्ध हो गयी। तुम आनेवाली शरद्-ऋतुकी रात्रियोंमें मेरे साथ विहार (आत्मसात्) करोगी। सतियो! इसी उद्देश्यसे तुम लोगोंने यह व्रत (भक्ति) और कात्यायनी देवीकी पूजा की थी।'

चीर-हरणका अर्थ यही है कि भक्तके मनमें जो संस्कार होते हैं, वे विना भगवान्को कृपासे नहीं हटते हैं और इसी परदेको हटानेके लिए भगवान्को स्वयं प्रयत्न करना पड़ता है। गोपियोंकी इस दिव्य लीलाका जीवन उच्चश्रेणीके साधकके लिए आदर्श जीवन है। श्री कृष्ण जीवके प्राप्तव्य साक्षात् परमात्मा हैं। हमारी एकमात्र बुद्धि, हमारी दृष्टि देहतक ही सीमित है। इसलिए हम श्री कृष्ण और गोपियोंके प्रेमको भी केवल दैहिक तथा कामनाकलुषित समझ बैठते हैं। उस अपार्थिव और अप्राकृत लीलाको इस प्रकृतिके राज्यमें घसीट लाना हमारी स्थूल वासनाओंका हानिकर परिणाम है। भगवान् कहते हैं—'संस्कार-शून्य होकर, निरावरण होकर, मायाका परदा हटाकर मेरे पास आओ।'

भगवान्की रासलीलाके प्रसंगमें हमें यह बात पहले समझ लेनी चाहिए कि भगवान्का शरीर जीव-शरीरकी भाँति जड़ नहीं होता है। यह देह है और यह देही भाव केवल प्रकृतिके राज्यमें ही होता है। अप्राकृतलोक तो केवल चिद्विलासकी सिद्धिके लिए होता है। भगवान्के समान ही गोपियाँ परम रसमयी और सच्चिदानन्दमयी ही हैं। साधनाकी दृष्टिसे भी उन्होंने न केवल जड़शरीरका ही त्याग कर दिया है, बल्कि सूक्ष्मशरीरसे प्राप्त होनेवाले स्वर्ग, कैवल्यसे अनुभव होनेवाले मोक्ष—और तो क्या, जड़ताकी दृष्टिका ही त्याग कर दिया है। उनकी इस अलौकिक स्थितिमें स्थूलशरीर, उसकी स्मृति और उसके सम्बन्धसे होनेवाले अंग-संगकी कल्पना किसी भी प्रकार नहीं की जा सकती। ऐसी कल्पना तो केवल देहात्मबुद्धिसे जकड़े हुए जीवोंकी ही होती है। नदीके पार पहुँच जानेपर स्वाभाविक ही नौकाकी सवारी छूट जाती है, क्योंकि जमीनपर न तो नौकापर बैठकर चलनेका प्रश्न उठता है और न ऐसा चाहने या करनेवाला बुद्धिमान् ही माना जाता है। ये सब साधन वहींतक रहते

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हैं जहाँतक सारी वृत्तियाँ सहज स्वेच्छासे सदा सर्वदा एकमात्र भगवान्‌की ओर दौड़ने नहीं लग जातीं।

वास्तवमें गोपियोंके निष्कपट प्रेमका ही नामान्तर काम है और भगवान् श्री कृष्णका आत्मरमण अथवा उनकी दिव्य क्रीड़ा ही रति हैं। भगवान् श्री कृष्ण आत्मा हैं, आत्माकार वृत्ति श्री राधा हैं और शेष आत्माभिमुख वृत्तियाँ गोपियाँ हैं। उनका धाराप्रवाह रूपसे निरन्तर आत्मरमण ही रास है। श्रीमद्भागवतमें वर्णित रासलीला केवल रूपक या कल्पना नहीं है। उसमें जैसा वर्णन है, वैसा ही मिलन-विलासादिरूप श्रृंगारका रसास्वादन है, भेद इतना ही है कि वह लौकिक स्त्री-पुरुषोंका मिलन नहीं है। उसके नायक थे श्री कृष्ण और नायिका थीं श्री राधा और उनकी व्यूहरूपा उनकी घनीभूत मूर्तियाँ थीं श्री गोपीजन, अतः यह लीला अप्राकृत थी। इसी कारण श्री कृष्णकी योगमायाने ऐसी व्यवस्था कर रखी थी कि गोपियोंके पतियोंको वे गोपियाँ अपने घरमें अपने पास दीखतीं थीं। क्योंकि मिठाई करेलाके आकारकी होनेपर भी मीठी ही रहती है, उसी तरह परमात्मा अनेक रूप लेनेपर भी परमात्मा ही रहता है। किन्तु करेला मिठाईकी शक्लमें भी कडुआ ही रहेगा और इसी तरह साधारण मनुष्य भगवान्‌की लीलाओंको भी अपनी (करेला रूपी) बुद्धिसे तौलता है और उनमें विषयासक्तिकी परछायीं देखता है, अतः मोहग्रस्त मनुष्योंको श्री कृष्णके रास आदि अंतरंग लीलाओंका अनुकरण नहीं करना चाहिए और जो ऐसा करनेकी चेष्टा करते हैं उनका घोर पतन होता है।

श्रीमद्भागवतमें वर्णित रासलीलाका अर्थ है—भक्तकी तन्मयता, अपने को, अपने सम्बन्धोंको जो भूल जाय, ऐसी तन्मय स्थिति। तभी वह ईश्वरसे एकाकार होता है जिसे हम प्रेमाकार भक्ति कहते हैं और यही रासलीला है। ●

स्वयंप्रकाशमें असन्तोष कहाँ ?

एक मित्रने एक बार श्री श्री माँ आनन्दमयीसे प्रश्न किया : 'माँ ! मुझे ब्रह्मज्ञान तो हो गया है, पर अभी तक असन्तोष नहीं मिटा। क्या कारण है?'

माँने तत्काल उत्तर दिया : 'पिता जी ! स्वयंप्रकाशमें असन्तोष कहाँ ?'

अभिप्राय यह कि असन्तोषका अस्तित्व मिथ्या ज्ञानमें ही है। तत्त्वज्ञान द्वारा मिथ्याज्ञानकी निवृत्ति हो जानेपर शुद्ध स्वरूपमें सन्तोष-असन्तोषका प्रश्न ही नहीं उठता। फिर मिथ्या वृत्तिमें भी सन्तोष-असन्तोषका कोई महत्त्व हो नहीं। ●

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अभिमानी अन्धा

कहना न चाहिए, तथापि तुम जानते हो,
सभी वस्तुओं से भक्ति ही तो एक प्यारी है।
कैसे कहाँ कब मिलोगे ?—यह ठिकाना नहीं,
फिर भी निरन्तर तुम्हारी खोज जारी है॥

कहते सङ्कोच होता—आओ द्रुत दर्शन दो,
आज्ञा तुमको दूँ ! सेवा करनी तुम्हारी है।
देखूँगा अवश्य कभी तुम्हें सभी प्राणियों में,
किन्तु अभी दृष्टि थोड़ी धुँधली हमारी है॥

श्याममय सुअञ्जन लगाता इन आँखों में,
ओषधि अमोघ यह विज्ञों की जानी है।
चलता टटोलता ही कोई ध्वनि सुनता मैं,
होता है ज्ञात—यह पद्धति पहचानी है॥

हूँ तो जीवन में, परन्तु प्यास मिटती नहीं,
कुछ भी न लेता, कोई कहे—'बकध्यानी' है।
तुमसे भी याचना न करना मुझे है इष्ट,
ज्ञानी नहीं कोई यह अन्धा अभिमानी है॥

—श्री नन्दकिशोर झा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति

[राष्ट्रभाषा-पतञ्जलि श्री निगमानन्द जी परमहंस]

'ईशावास्य' उपनिषद्‌ने कर्मयोगका अत्यंत स्पष्ट प्रतिपादन किया है; इसीलिए वह श्रीमद्भगवद्गीताकी 'जननी' कहलायी। गीताने दार्शनिकोंके अधूरे ईश्वर-तत्त्वको पूर्णता प्रदान की; इसीलिए वह दर्शनोंकी 'शिरोमणि' मानी गयी। महाभाष्यकार पतञ्जलिने शब्दशुद्धिपर इतना प्रामाणिक विवेचन किया कि सर्वसम्मतिसे उद्भट विद्वानोंको कहना पड़ा— **'उत्तरोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यम्।'** अर्थात् महाभाष्यकारने जहाँतक कह डाला कि अब उसमें ननु-नच हो ही नहीं सकता। उन्हींका कहना है—**'स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति'**=वाणीका गलत प्रयोग वज्ररूप होता है, प्रयोक्ताको ही मार डालता है।

जो आज बड़े-बड़े महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयोंमें गुरुजनोंपर शस्त्र-प्रहार हो रहे हैं। क्या वह सब 'धर्म' शब्दका गलत प्रयोग करनेके कारण नहीं? 'धर्मनिरपेक्ष राज्य'का मतलब क्या? क्या आप चाहते हैं कि आपका लड़का आपपर फूल चढ़ानेके स्थानपर आपपर धूल उछाले? क्या आप चाहते हैं कि आपकी पुत्री तितली बनकर दूसरोंके हाथोंपर नाचे? क्या आप चाहते हैं कि आपकी पत्नी आपकी परवाह न करके उलटे राहपर चले? मैं समझता हूँ कि कोई भी समझदार शान्तिप्रिय व्यक्ति ऐसा कभी नहीं चाहेगा। 'धर्मशिक्षा' से ही यह बोध होता है कि गुरुजनों, सुहृद्‌जनों, परिजनों एवं अन्यजनोंके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए। फिर 'धर्मनिरपेक्ष राज्य' नामकरण क्यों?

यहाँ 'धर्म' शब्दका गलत अर्थमें प्रयोग हुआ है। इसके स्थानपर चाहिए था—'मजहबनिरपेक्ष', 'वर्गनिरपेक्ष', 'पन्थनिरपेक्ष', सम्प्रदायनिरपेक्ष' आदि कोई शब्द।

साम्प्रदायिक 'मुस्लिम' शब्दके संगदोषसे 'हिन्दु' शब्दको भी साम्प्रदायिक मान लिया गया है जो सर्वथा अविवेकपूर्ण है। 'सम्प्रदाय' उसे कहते हैं जिसका एक ही आचार्य हो, एक ही प्रवर्तक हो तथा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जिसके अपने दस-बीस नियम हों। परन्तु 'हिन्दु' शब्द कदापि साम्प्रदायिक नहीं। मीमांसक ईश्वरको नहीं मानता, वह भी 'हिन्दु'। सांख्य दबी जबानसे ईश्वरको मानता है, वह भी 'हिन्दु'। वेदान्ती 'मैं ही ईश्वर हूँ' कहता है, वह भी 'हिन्दु'। बाल घुटानेपर भी 'हिन्दु', बाल बढ़ानेपर भी 'हिन्दु' तथा बाल उड़ाने (उखाड़ने) पर भी 'हिन्दु'। कारण कि 'हिन्दु' शब्द किसी सम्प्रदाय-विशेषका वाचक नहीं।

क्या आपने कभी सोचा कि महात्मा कबीर, गुरुनानक देव, महात्मा गांधी, सन्त बिनोवा आदि सभी महापुरुष एक सच्ची बात समझानेमें सर्वथा कृतकार्य नहीं हुए। बात बिल्कुल साधारण है कि "सब हम मनुष्य हैं, हम सब भाई-भाई हैं, एक ही मिट्टी और हवामें पले हैं तथा हमारे हित-मत एक हैं।" यदि लोग इतनी-सी बात समझ गये होते तो पाकिस्तान क्यों वनता ? पंजाबका पुनर्गठन क्यों होता ? आबू पहाड़ गुजरातमें-से चलकर राजस्थानमें कैसे चला आता ? बम्बई महाराष्ट्रमें कैसे चली जाती ? जाटोंका हरियाणा भाखड़ा नंगलके होते हुए भी सूखा कैसे रह जाता ? इन सब झगड़ोंकी जड़ है 'जाति' शब्दका गलत अर्थमें प्रयोग।

आश्चर्य है जिस बातको अनपढ़ साधारण एक वच्चा भी समझता है उसी बातको पढ़े-लिखे लोग नहीं समझते। आप किसी बच्चेसे पूछिये—'देखो, कौन आ रहा है ?' वह उत्तर देगा—कोई आदमी आ रहा है—कोई मनुष्य आ रहा है। अर्थात् जो कोई आ रहा है वह मनुष्यजातिका है। परन्तु आजकलके समाचारपत्रोंमें छपा रहता है—'एक जातिके मनुष्योंका दूसरी जातिके मनुष्योंके साथ झगड़ा हो गया', 'बहुसंख्यक जातिके लोगोंने अल्पसंख्यकजातिके लोगोंके घर जला दिये', 'सिख-जाति बहुत वीर है' आदि आदि।

हमें सम्पादक विद्वानोंकी सद्भावनामें किञ्चित् भी सन्देह नहीं। हम जानते हैं कि उनके मनमें सम्प्रदायवाची शब्दोंसे बचनेका भाव है। जिससे परस्पर कटुता बढ़ने और फैलने न पाये। किंतु कहीं 'बिल्ली निकालने चले थे, ऊँट घुस गया' वाली बात तो नहीं हो रही है ? क्या मनुष्य-मनुष्यमें जातिभेद है ? फिर ऐसे-ऐसे प्रयोग क्यों ? लिखना चाहिए—'अमुक वर्गके लोगोंका अमुकवर्गके लोगोंके साथ झगड़ा हो गया', 'बहुमतके लोगोंने अल्पमतके लोगोंके घर जला दिये', 'पंजाबके वासी वीर होते हैं' आदि। अथवा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ऐसे स्थानोंपर वर्ग, मत, पन्थ, मजहब, सम्प्रदाय आदि शब्द ही लिखने और बोलने चाहिए। कारण कि प्राचीन आचार्योंने ऐसा ही प्रयोग किया है।

भगवान् पतञ्जलि 'जाति' शब्दका अर्थ बताते हैं कि— 'आकृतिग्रहणा जातिः' आकृतिः= अवयवसन्निवेशविशेषः, ग्रहणम्= व्यञ्जकं यस्याः सा जातिः। अंग-प्रत्यंगोंकी बनावटसे जिसका बोध हो उसका नाम 'जाति' है। मनुष्य-मात्रके अंग-प्रत्यंग उत्पत्तिक्रम आदि एक-से हैं। इसलिए मनुष्य-जाति एक ही है, भिन्न-भिन्न नहीं।

नैयायिकोंका कहना है कि— 'सामान्यं जातिः'=सामान्यको 'जाति' कहते हैं। जैसे 'विमान' नाम हवाई जहाजका है। 'वि' नाम पक्षीका है और 'मान' नाम मापका है आकारका है। अर्थात् जिसका आकार पक्षीका-सा हो उसे 'विमान' कहते हैं। वैसे ही 'समान' शब्दमें भी 'मान' नाम मापका-आकारका-शक्ल - सूरतका है और 'स' शब्दका अर्थ है तुल्य-सदृश। अर्थात् एक-से आकारवाले-शक्लसूरतवाले 'समान' कहलाते हैं। उनमें रहनेवाला नित्य तत्त्व 'सामान्य' कहलाता है। उसीका नाम जाति है जो भिन्नोंमें अभिन्न एवं छिन्नोंमें अछिन्न रहती है क्योंकि वह नित्य है।

अमरकोशके टीकाकारने भी 'समान' शब्दकी ऐसी ही व्युत्पत्ति की है—'सह मानेन वर्तते इति-समानः' अथवा 'समानं मानं यस्येति।'

वेदान्तियोंका कहना है कि भेद तीन प्रकारका होता है—सजातीय, विजातीय और स्वगत। एक मनुष्यका दूसरे मनुष्यसे जो भेद है वह सजातीय भेद है—एक-जातीय भेद है; कारण कि मनुष्य-मात्र एक जाति है। जो मनुष्यका पशु आदिसे भेद है वह विजातीय भेद है; क्योंकि मनुष्यजातिसे पशु-जाति भिन्न है। अपने अंगोंसे जो अपना=चेतनका भेद है वह स्वगतभेद है।

भगवान्ने मनुष्यजाति एक ही बनायी। परन्तु भगवान्के बनाये मनुष्योंने मनुष्योंमें भी अनेक जातियाँ बना डालीं। पहले देश-भेद,, फिर वेशभेद, केशभेद, प्रान्तभेद, भाषाभेद आदि कितने भेद खड़े किये। परन्तु मनुष्यका आकार नहीं बदला।

भाषाभेद मनुष्यके देशका भिन्नताका सूचक है, देहका भिन्नताका नहीं। वेशविशेष भिन्न रुचिका द्योतक है भिन्न जातिका द्योतक नहीं। परन्तु पेटके भूखोंने,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ध्यानकी कुञ्जी

★

जो सन्ध्या-वन्दन करता है और प्रतिदिन सूर्यको अर्घ्य देता है, वह आत्मज्ञानका अधिकारी हो जाता है। सूर्य प्रकाशका देवता है। वह नेत्रका अधिष्ठाता है। गायत्रीका 'सविता' है। विश्वका निवासस्थान है। जो प्रकाशका आदर नहीं करेगा, वह ज्ञानका पात्र नहीं हो सकता।

वस्तुतः अधिभूत नेत्रगोलक, अधिदैव सूर्य और अध्यात्म पुरुष—तीनों एक ही काल और एक ही स्थानमें रहते हैं। इनमें वस्तुभेद होना सम्भव नहीं। नेत्र-गोलक व्यावहारिक है, अधिष्ठातृ-देवता प्रातिभासिक है और अध्यात्म-पुरुष पारमार्थिक। स्वरूपज्ञानसे त्रित्वका बाध हो जाता है।

सन्ध्या-वन्दन सम्पूर्ण साधनोंका सार है। इसमें धर्मकी पवित्रता, योगके आसन-प्राणायाम, उपासनाका मन्त्र-जप और ध्यान एवं वेदान्तकी निष्कामता अर्थात् अन्तःकरणशुद्धि विद्यमान है। इसमें अर्थ-ज्ञानपूर्वक मन्त्रोंका पाठ किया जाय तो सृष्टिकी प्रक्रिया, ईश्वरका स्वरूप, जीव और ईश्वरका सामानाधिकरण्य और ब्रह्म-सूर्यके साथ आत्माकी एकताका निरूपण है। यह मनुष्यका दुर्भाग्य ही है कि सन्ध्या-वन्दनमें उसकी रुचि नहीं होती। सन्ध्या अर्थात् सम्यक् ध्यानकी कुञ्जी।

पेटीके पुजारियोंने कुर्सीके कांक्षियोंने, वोटोंके बेटोंने यह सब मानव-मानवमें भेद खड़ा कर रखा है। इसलिए, आइये हम सब सही अर्थमें 'जाति' शब्दका प्रयोग करें तथा मानव-मानवकी एकता प्रकट करें। जिससे सब लड़ाई-झगड़े काफूर हो जायँ। नहीं तो 'स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति' तो हो ही रहा है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

निष्ठाका चमत्कार

श्री उड़ियाबाबा जी के आश्रममें एक बार एक मास तक रामलीला हुई। जब तक लीला होती, श्री हरिबाबा जी महाराज लीलाके स्वरूपोंको बड़े-प्रेम और तन्मयताके साथ पंखा झलते रहते। एक दिन बात-चीतके समय किसीने उनसे कहा : 'लीलामें सब कुछ अच्छा है, पर भगवान् रामके स्वरूप गोरे हैं, यही कमी है।'

श्री हरिबाबा जीने कहा : 'अच्छा, गोरे हैं? मैंने तो कभी इसकी ओर ध्यान ही नहीं दिया। पर क्या तुम काला-गोरा—यही सब देखते रहते हो?'

मैंने उनसे पूछा : 'आपको क्या दीखता है?'

वे बोले : 'मैं कालेजमें पढ़ाईके समय अवकाश मिलने पर अपने गुरु महाराज स्वामी श्री सच्चिदानन्दके पास जाता और उन्हें पंखा झलता। उसी समयके अभ्यासवश पंखा झलता हूँ तो दीखता है कि मेरे गुरु महाराज पलंगपर लेटे हुए हैं और मैं पंखा झल रहा हूँ।'

निष्ठा सच्ची हो तो सर्वत्र अपने इष्टका ही दर्शन होता है।

●

• लोक-सुख और परमार्थ-सुख

दोनों शिष्य समान रूपसे मृदुभाषी, सरलचित्त एवं सेवा-परायण थे, पर महात्मा जीका व्यवहार उनके साथ विषम था। एकके लिए कमरा, पलंग, वस्त्र, भोजन आदि सुख-सुविधाओंकी पूरी व्यवस्था थी तो दूसरेके लिए रूखा-सूखा भोजन और सोनेके लिए चटाई। एक दिन बाहरसे कोई सन्त आये। उन्होंने अपनी आँखों यह दुभाँति देखी। एकान्तमें महात्मासे पूछा : 'आप अपने समकक्ष शिष्यांसे ऐसी विषमताका बर्ताव किस अभिप्रायसे करते हैं? यह अनुचित लगता है।' महात्माने कहा : 'सन्त जी! किसीसे मत कहना बात गुप्त है। एकको लौकिक-सुख दे रहा हूँ तो दूसरेको परमार्थ-सुखके योग्य बना रहा हूँ।'

सन्त जीका हृदय आनन्दसे भर गया।

■

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

With best Complements from

Bombay Oil Industries Pvt. Ltd.

Manufacturers of :

Saffola

Cocovite

and

Parachute Brand

Filtered & Refined Cooking

Oils

and

'Everest'

Brand Stearic Acid

★

KANMOOR HOUSE

BOMBAY - 9 BR

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ॐ

With best Compliments

From :

NALINKANT & Co.

Fancy Cloth Merchants

Dealers in : **MAFATLAL GROUP Mills**

House No. 1/1A

Old Hanuman Cross Lane 1st Floor

Bombay–2

ॐ

With best Compliments

From :

Surendra Rasiklal & Co.

Dealers in : **MAFATLAL GROUP Mills**

619, Krishnaraj Gally,

MULJI JETHA MARKET

Bombay-2

Phone : 314487

Gram : TYPHOON.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सतिगुर प्रसाद

[भक्तप्रवर श्री कोकिल साईं]

(१७)

सज्जन समूह मन कमल विकास करे,
शुभ्र सत्संग द्युति चन्द्र ज्यों चढ़ी रहे।
सुरुचि पहाड़ सी, सघन घन सार सी,
श्री मञ्जु गंगाधार सी, आनंदमें मढ़ी रहे।
सत्य सी सतोगुण सी, शारदा सी शेष ऐसी,
पार्थिवचन्द्र पद प्रीति, नित नव बढ़ी रहे।
श्रीगुरु जानिकी चन्द्र, पदकंज पिकवृन्द,
कीरति अखण्ड, महि मंडल हढ़ी रहे।

श्री कोकिल साईं श्री वैकुण्ठेश्वर वाहगुरु श्रीमन्नारायणसे यह वरदान माँगते हैं—

हे प्रभो! सत्पुरुष महात्मा समूहका मन कमलकी तरह प्रफुल्लित रहे। जैसे सूर्यको देखकर कमल खिलते हैं वैसे ही अपने हृदयमें प्यारे इष्टदेवका दर्शन कर विकसित होते रहें। उनके सत्संगसे हमारा मन-कमल विकसित होता रहे और सर्वदा उन्हींकी सत्संग-सेवाकी सुन्दर शक्ति हमारे हृदयमें चन्द्रमाकी चाँदनीकी तरह चमकती रहे। सत्सगमें बैठनेसे ऐसा आनन्द अनुभव हो मानों शरत्पूर्णिमाकी ज्योत्स्नामें नहा रहे हों। जैसे चकोरको चन्द्र-दर्शनकी प्यास रहती है वैसे ही हमें सत्संगकी प्यास हो।

हे नाथ! हमें पहाड़के समान अविचल दृढ़ शुभ मति दो। जो मति निश्छल निष्काम होकर प्रियतम प्रभुकी ओर प्रेमसे प्रवाहित हो वही शुभ मति है। वह पर्वतकी भाँति स्थिर एवं घनीभूत हो; किन्तु कठोर न हो। बादलकी भाँति सदा रसकी वर्षा करती रहे, घनसारकी तरह ठण्डी सुगन्धित व उज्ज्वल हो। क्रोधका कारण होते हुए भी क्रोध न आना यह ठण्डक है। श्री युगलसरकारके सुयशगानकी सौरभसे सुगन्धित हो, और उज्ज्वलता यह है कि मोह प्रपञ्चकी कोई भी मलीनता छू न सके।

साधुसंगके प्यासे कोकिल साईं कहते हैं कि—जैसे गगादेवी अनेक धाराओंमें बहती हुई समुद्रकी ओर जाती हैं वैसे ही मेरी मति भी कोमल प्रेम-उमंगोंमें प्रवाहित हो। श्री प्रिया-प्रियतम श्री सियारामचन्द्र आनन्द-

८

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

समुद्रमें जा मिलें। वह प्रेममयी मति सत्यकी भाँति अविनाशी हो और सात्त्विक गुणोंसे मण्डित हो तथा सरस्वती देवीकी तरह नवीन-नवीन भावमयी रचनाओंसे श्री स्वामिनी पृथिवीनन्दिनीकी गुण-गाथा गाती रहे। जैसे शेष भगवान् नाम रटते नहीं अघाते वैसे ही नाम रटनेमें कभी अरुचि न हो। श्री पार्थिविचन्द्रके पादपद्मोंमें हमारी परा प्रीति बनी रहे, जहाँ दु:ख-सुख, हानि-लाभ आदि कोई भी लौकिक बाधा पहुँचने न पाये।

हे परम कृपालु बाबा! हम अपने श्री गुरुदेव श्री जानकी जीके पद-कमलोंकी कोकिल होकर, उनकी अखण्ड कीर्ति सारे महिमण्डलमें गाती फिरें। पृथ्वीके कोने-कोनेमें श्री सियाराम-सुयशको फैलावें। सत्‌गुरु श्री मैथिलिचन्द्रकी जय-जय मनाती रहें।

टिप्पणी—प्रेमकी गाढ़ अवस्थामें सत्‌गुरु और इष्टमें अभेदता हो जाती है। इसलिए साईं साहब श्री स्वामिनी जीको श्री गुरुदेव कहते हैं।

भक्त शिशु है, ज्ञानी युवा

माता-पिताकी भक्ति आत्मज्ञानका प्रथम सोपान है। इसीसे देश-भक्ति और विराट्-भक्तिका उदय होता है। यह मातृत्व और पितृत्व ही लक्ष्मीनारायण और गौरीशंकरका परिचायक है। जैसे अन्नकी उत्पत्तिके लिए बीज और खेत दोनों चाहिए, वैसे ही विश्वकी उत्पत्तिके लिए प्रकृति-माता और ईश्वर-पिता—दोनोंकी आवश्यकता है। जब ईश्वरकी गोदमें प्रकृति अपनेको छिपा देती है, तब वह अनिर्वचनीय माया हो जाती है। जब ईश्वर प्रकृतिके गर्भमें अपनेको डाल देता है, तब वह विश्वके रूपमें प्रकट हो जाता है। यह लीला अनादि और प्रवाहरूपसे नित्य चल रही है। माता-पिताकी भक्ति इसी लीलामें जीवको मिला देनेमें समर्थ है। प्रकृति-पुरुषके अनन्त-शृङ्गारमें जीव कभी डूबता है तो कभी इतराता है। जब केवल प्रकृतिको देखता है तो प्रकृतिमें मग्न हो जाता है। जब केवल ईश्वरको देखता है तब ईश्वरमें मग्न हो जाता है। जब यह माता-पिताके वास्तविक स्वरूप और अपने वास्तविक स्वरूपको पहचानता है तो शृङ्गार-लीलासे मुक्त हो जाता है। पुत्र जबतक शिशु है, तभीतक वह माता-पिताकी मधुर-लीलामें रह सकता है। युवा होनेपर वह उसका अधिकारी नहीं होता। भक्त शिशु है और ज्ञानी युवा।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Chintamani

English Edition

PUBLISHED BY

Satsahitya Prakashan Trust

Vipul

28/16 Ridge Road

BOMBAY—6 (W. B.)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

With best. Compliments

From :

Chintamani

SATSAHITYA PRAKASHAN TRUST

ON THE OCCASION

OF

DEEPAWALI—1969

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Are you doing your bit for the nation ?

★

The world is in the midst of crises today. Peoples and countries are in conflict and humanity weeps in silence. Religions are clashing and the Dharma is withering away. There is dispute over language and ideology and no one bothers about knowledge and wisdom. The strife among the parties everywhere leads to the defeat of the people. The over emphasis on regionalism weakens the over all unity of the nation. The poor and the downtrodden are being provoked to take to violence or offered bait of conversion to another faith as a way out of their unhappy situation. The fundamental unity of life through Divine force is not now emphasised in education anywhere in the world. In short the future of nations nay humanity itself is in peril.

What is the way out of this encircling gloom ? It is to re-discover, re-affirm and re-proclaim the basic unity of man. These divisions of mankind into races and religions, creeds and classes cultures and civilisations will fall into their proper place in this grand mosaic pattern of humanity, once man is able to re-capture the spiritual vision, the vision of the Rishis, Munis, Prophets and Saviours. Harmony among people and nations is possible only through the wisdom of heart and not through clever manipulations of the intellect. A man of emancipated heart and mind will naturally strive to secure basic needs of a good life, worthy of a human being for every

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

one. Even enlightened self-interest demands that mankiud can no longer be kept apart in two seperate opposite camps-the priviledged few and the oppressed millions. That way lies disaster. The masses are in stir, they are walking up from their age-old stupor and slumber. They can no longer be befooled by empty slogans in the name of the nation or God or religion. The unity of mankind and harmony among nations and classes is possible only by doing away with the present glaring inequities and inequalities.

Take our own country today. Poverty, misery, squalor, ignorance and disease reign supreme in Bharat. Howsoever glorious our past, whatever the beauty of Indian way of life or the loftiness of Indian thought or howsoever rational our ancient Varnashram Dharma might have been, today we cannot feed our hungry millions on these grand visions. Visions, invocations and slogans are poor substitutes for the hard realities of present day existence. Each one of us, in his or her own way of sphere, will have to work for bringing about a radical change in our societles. To fight against injustice and every kind of exploitation and every kind of slavery-political, social and religious is the sacred duty of every son and daughter of India. India has a great role to play on the world stage. But first let Indians set their own house in order.

What are you doing for this long-awaited transformation ?

Agust 15, 1969

(Swami Akhandanand Saraswati)
President
Bharat Sadhu Samaj

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

The Glory of Smritis

By : Rajguru Hari Datt Shastri

★

This Universe presents itself as a constant current of Expansion and Contraction and of Light and Darkess. It can be compared to an ocean with its rising and falling tides. High and low tides are only illusory shapes of the ocean itself. They represent its activity but have no existence independent of the ocean. The Changing Universe is also an illusion (अविद्या) a mere glimpse of the Eternal Spirit (आत्मा) which is the stable reality behind it. Men of knowledge are never perturbed by either the destruction or the creation of this universe.

The physical world can by known in the form of day and night which are caused by the bright Sun. Thus the light of the Sun is the magnetic force and the principal ingredient of all the animate and inanimate objects comprising the physical world.

From the earaliest of times, two opposing forces or currents—learning and illiteracy, knowledge and ignorance, Godly life and Satanic ill-will—have been running through the universe. Several schools of thought have developed in the effort to explain the real creative force behind the universe. The Philosophy tells us that the physical universe is essentially based on the gratification of the senses and this is known as the Satanic world. The other world on knowledge is known Godly world. Thought and action in the satanic and sensual world are directed towards the gratification of one's senses through amusements and luxuries. Accordingly, one is expected to work for and live a life of social, physical,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

and sensual conatets. This tendency is ruinous for the world; it creates disorders and disturbs the Peace of the World. It destroys the feelings of brotherhood and equality.

The second force or current is essentially one of knowledge and light. It lead man to the realization of truth and peace. It produces among all creatures a feeling of truth and equality. This in its turn creates faith in the Almighty. The Upanishads and the Geeta are the manifestation of this tendency.

What is the cause of this Universe ? This problem has been tackled in several books and treatises but most of them base their arguments on appearances. As a matter of fact, the real cause of this Universe is illusion at is illusion that brings Univers in to existence, when ignorance gives way to knowledge, the existence of the Universe disappears. The mirage in the desert appears to be the waves of water from the distance, but on closer observation, they come out to be nothing but the play of the sands of the desert. Similarly, the reality of this universe is understood with the help of knowledge.

Every thing in this Universe has a three fold relation ship—Birth, Existence and Death. These Subjects have been thoroughly dealt in Smritis which means recollection. The ancient Rishis with the help of their yoga saw in the sky invisible shapes and heard inaudible sounds. Whateve- letters and words were formed on those waves, they were the guiding utterances of God and have been called by philosophers, 'Shabda-Praman'. The literary men call it the word of God. On the basis of recollection of those invible sounds the Rishis laid down in detail the physical, cultural and socil code of Conduct of mankind in the 'Smritis'. So far Sixtyfive 'Smritis' have been discovered. It is possible there may be more even.

The purpose of all the 'Smiritis' is that when the creative force enters the human body, it forgets its own shape as in dream one forgets one's own active actions. In order to

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

check the Universe from going towards 'Satanism' and other evil disturbances, the ancient Rishis have given to the world their experiences and realisations so that the world may live upto them. The way of the 'Smiritis' is a sure way to bring peace in this world; to leade man to realise Truth in the end so that he may not feel sad over the destruction and decay of this wall of sand—the Universe.

In the 'Smriti shastra' manners and conduct have been specially dealt as they form the basis of cultural life. All the ceremonies from conception to marriage, have been discussed. The Smriti kass think that a child so born with 'Sanskar' is a pride to the parents, the country and the times. Cultural life depends upon this teaching and discipline. Those, who do not know the importance of ceremonies and knowledge in removing the curtain of darkness from their minds, are never able to see the evolution of a cultural life. Culture is known from the 'Smritis' and without the knowledge of 'Smritis' and the discipline presented there in, nobody can lead a cultural existence. Some people wrongly call civilisation as culture; civilisation is born out of social life.

In the chapter on manners the human society has been divided into four sects—Brahmin, Kshatriya, Vaishya and Shudra—on the basis of the principals of 'Varnashram' and the rhythmical relationship of three 'Gunas'—'Sat', 'Raj' and 'Tam'. According to this classification, everyone has been given the right and privilege to do what he is capable of doing so that the world may go on peacefully and amicably. These four 'Varnas' are all equal and none is superior or inferior. One who imparts knowledge is respected by all castes. Still all castes are equal and their duties are equally important for them.

The present—day idea of untouchability in some quarters is born out of ignorance of all the sixteen 'Sanskaras', the 'Upnayan' ceremony is the most important. Unless a child has gone through this ceremony he is regarded not worth touching. In the 'Upnayan ceremony he is taught—धीमहि धियो

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यो नः प्रचोदयात् i.e. O God ! Evolve and develop my intelligence. Shudras have been prohibited from these ceremonies and the purpose of this prohibition is not that they are inferior to others. Since they serve all other castes it has not been regarded wise to burden them further with these ceremonies. As one, who brings contributions for the 'Yajnas', also enjoys the fruits there of; similarly, Shudras enjoy the fruits of all those 'Yajnas', which are done by the members of other castes, whome they serve. Shudras have been defined in the 'Brahma Sutra' as—'शुगस्य तदनादरश्रवणात्' i.e. Shudra is one, who repents for shortlived ephemeral objects.

The fact is that a person of spiritual knowledge is respected by all, irrespective of his caste. Even the Brahmins were only respected when they possessed spiritual knowledge. Raidasji and Kabirdasji were revered by all even though they were by caste 'Chamar' and 'Weaver' respectively. Janak was a Kshatriya and Sajan, a butcher but because of their spiritual knowledge they were revered by all.

Thus all men are equal and all are able to get 'Mukti' (Salvation) according to their merits. Those, who regard Shudras as low and untouchable, suffer from a misgiving and do not know their own 'Shastras'.

Almost all the Smriti writers have regarded manners as the basis of the cultural life. Their view is that howsoever learned a man may be, if he is ill--mannered, he cannot be regarded as a learned man. Taking the discipline of good men as basis, the 'Smritis' have depicted the manners and conduct.

The guiding principles of great and good men have been dealt with and naturally their footsteps are followed by others. Therefore, one, who becomes good and great, should become very careful about his conduct because with a little mistake or neglect or sensuousness or pride, he can ruin the life of some others, who would follow him and he shall be held responsible before God.

Some 'Smritikars' think that so long as humanity was

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

following truth and Dharma, 'Vyavahar' was not necessary; 'Vyavahar' or law entered Government only, when Truth and Dharma declined and gratification of the senses increased. Within this come the 'Dand Dharma' and the 'Daya Dharma, Some Smritikars have given first place to manners, then to 'Vyavahar' or tact and finally to repentance. Acting acccording to the teachings of ancient Rishis is recognised as Dharma and the basis of the present Indian Penal Code has been taken from 'Manu' and 'Yajnavalkya'.

There are some 'Smritikars' like, 'Ashwalayan' 'Vyas' and 'Bodhayan' who give utmost importance to 'Varnashram Dharma' and repentance. But on carefully considering the teachings of 'Smritis', the importance of agriculture is evident. 'Yajnas' have been recommended only for those regions where agriculture is practised and the deer of black colour are found. 'Vishnu Smriti' prescribes worship of God and celebration of God festivals.

As a matter of fact, fear of God is very essential. At present, the barbarism and mutual distrust in the world is due to the fact that people do not recognise the existence of God. Creatures of all sorts run out of limits when they do not fear anybody. The Vedas clearly mention that the Sun, Moon and the different planets run on their orbits due to the fear of God. The knowledge about God can be had from the 'Smritis' and the books that tell us about this Power (which is not a subject of either physical or spiritual senses) are known as Shastras. One, who has no fear and love of God, does not deserve to be trusted by anybody in this world. This fear of God is also essential for invoking among the people a fear of the kingly authority.

By the grace of God a ray of hope has sparkled in my heart that the world would be able to enjoy peace and prosperity by acting up to the teaching of the 'Smritis', which are based on the great experiences of 'Manu' and others.

We find three sections in Smritis manner. Social law or 'Vyavahar' and repentance. In the section of manners

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(आचार) 'Sanskaras' have been described as the basis of social conduct. By followingthese 'Sanskaras' at the right time and in a proper way, the physical and parental dross is washed out with the help of 'Mantras'. As a result one's mind developes and the person concerned gains spiritual strength. Along with manners, social and moral life has also been depicted.

The second section deals with 'Vyavahar'. When life of social contact is handicapped, in order to run it on proper lines the moral duties and rights of the government, the ruler and the public have been given in detail.

The third section about repentance deals in details with the different kinds of sins and their consequences so that people may defer from sins and may take recourse to truth. In this chapter the different types of sin—कामज, क्रोधज, अज्ञानज, अतिताप, उपपातक, अतिदेश and संकरीकरण have been described and the way of repentance for each has been suggested. Thereby it has been attempted to create a task in the people for good doing and 'Sanyas Dharma' which implies the knowledge about ephemeral nature of the universe and the true realisation of God.

Thus the aim and purpose of all the smritis is to develop man's cultural life and evolve his moral, religous, social and personal life,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

To A Sadhaka

By : Madhava

• ★ •

Dear friend, you are mine. I am yours. Let us travel together on the path of Sadhana. How ? I shall tell you.

Relax yourself and get into the best frame of mind—peaceful and beautiful and then think :

I am made in the mirage of God. Therefore, the peace the bless that is God's nature must like wise be at the heart and centre of my being. I let myself sink into the arms of the Eternal lover like a tired child in its mother's arms. Peace and bliss steal over me and the quiet of the Eternal wraps itself around me. Be still and know and feel His presence in and around you. I feel now the infinite peace and bliss. I am quiet. Relaxed, passive in thy unruffled peace and bliss.

When you allow the Omnipatent God to think His cerative thoughts through you are one with Him and the more you surrender yourself to Him the more perfect and blissful will your life become.

Say to yourself : "I am part and parcel of this beautiful universe, part of that silent sun, part of the infinite hand of love. Deep within me respond to the 'Call' of the Divine. The unburried tranquillity of the Eternal is part of my true nature."

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Man's Hunger for Re-Union

There is no such person as an atheist. Some call themselves atheists without knowing what they mean thereby either out of frustration or because the political philosophy calls for atheism. These men are all atheists of the intellect. No one is an atheist of the heart and the spirit. It is impossible. In each is the eternal hunger for re-union with his maker. Some recognise it early in life, others later, some never at all. But it is there nevertheless. The spirit of man can never be satisfied without spiritual sustenance from his creator. The Infinite is questing for an expressional outlet through man. When man recognises it, union can take place.

Ah God! that men waned see a
little clearer,
Or judge less harshly where they
cannot see!
Ah God! that men would draw
a little nearer
To one another—they would be
nearer thee.

Keep Smiling

A smile pays an implicit Compliment to the person to whom it is given. It is one way of saying I like you, I feel close to you—A smile is associated will divine union and joy. We are unconsciously drawn toward the person who smiles at us. Smile means good will, love, praise, hope and generous congratulations.

If the lack of money is the source of your troubles

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

you are bringing them on yourself because you are allowing the parent thought of futility to dominate your thinking. Your fortune begins with you. Believe, you will have what you need. If you are confident you are resourceful.

Your body is a temple in which God dwells; all of this methods and activities are those of right action. Wish harm or sorrow to none. Let your spirit sing and dance in joy. Life is more than physical. Don'tgive way to negative ideas. Be good, do good for God is always with you, in you and for you. Love thinketh no evil. Pérfect love casteth out fear. When one shifts the centre of his attention from himself and develops a central interest in other he begins to free himself from all kinds of tinidites. The poet offered a way of escape when he said, "Be self forgot in serving others need." Thus competition becoms an opportiunity for accomplishment when you overcome the parent thought of hostility and think of the world as a friendly place in which there is enough to satisfy all.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

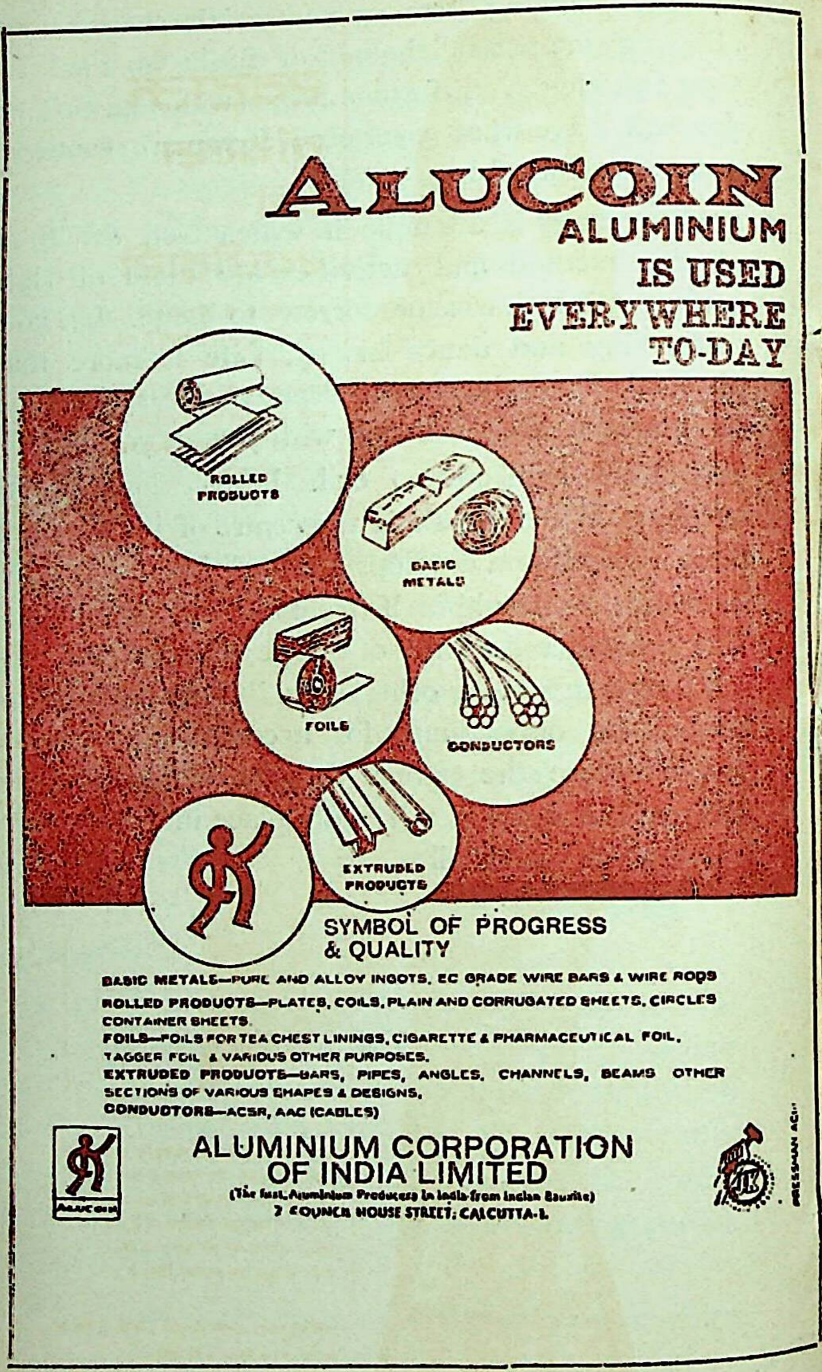

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

खटाऊ वॉयल्स की ख़रीदारी

खटाऊ वॉयल्स की ख़रीदारी करने में जो मज़ा आता है वह और किसी में नहीं। तरह तरह के रंग, प्रिन्ट्स और स्टाइल्स में बहुरंगी वॉयल्स की कतार लगी होती है। इतनी कम कीमत में इतने सारे वस्त्रों में से चुनने का अवसर आपको केवल खटाऊ ही पेश कर सकते हैं।

ाऊ मिल के
ड़ों के हर एक मीटर
मेन्टेड द्वार
नव देता है।"

दि खटाऊ मकनजी
स्पिनिंग एण्ड वीविंग कं. लि.
हेड ऑफिस:
लक्ष्मी बिल्डिंग,
बेलार्ड एस्टेट, बम्बई १.
मिल: हेन्स रोड,
भायखला, बम्बई २७.
व्होलसेल क्लॉथ शॉप:
गोविंद चौक,
मुलजी जेठा मार्केट, बम्बई २.
रिटेल स्टोर्स:
गणेश वाडी,
शेख मेमन स्ट्रीट, बम्बई २.
हकीम बिल्डिंग,
वीर नरीमन रोड, बम्बई १.
मिल प्रिमिसेस,
हेन्स रोड, भायखला,
बम्बई २७.

यह देखिए—एक निहायत 'दिलफ़रेब' वॉयल! कितना आधुनिक और मनोरम है इसका प्रिंट! 'तम्बाकू' रंग की कांती वाले कपड़े तो इस वर्ष सर्वाधिक लोकप्रिय रहे हैं और विभिन्न कांतियों का तो खटाऊ ने इस वॉयल में खुल कर समावेश किया है।

किसी भी समय... किसी भी जगह... किसी भी मौके पर...
आप तो खटाऊ वॉयल्स में ही जंचेंगे।

खटाऊ
वायल्स

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रजि० सं० एल० ...

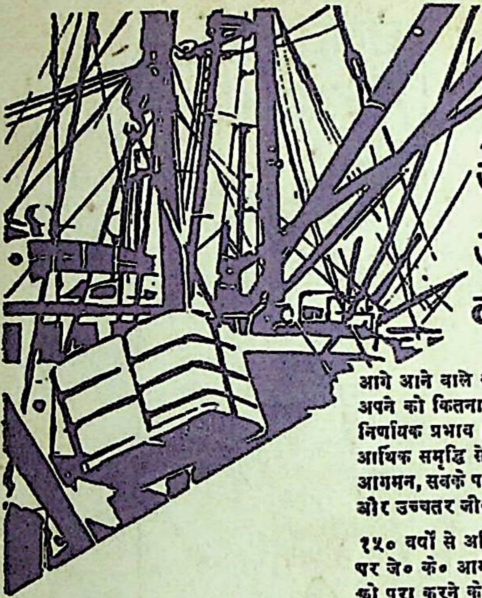

उद्योग—
आर्थिक समृद्धि
का मापदंड

आगे आने वाले कार्य के सम्पादन के लिए
अपने को कितना तैयार कर पाते हैं, उसी
निर्णायक प्रभाव हमारी आर्थिक समृद्धि पर
आर्थिक समृद्धि से तात्पर्य है—अच्छे दिनों
आगमन, सबके पास खर्च करने को साधनों
और उच्चतर जीवन-यापन की सुविधाओं

१५० वर्षों से अधिक के अपने अनुभवों के
पर जे० के० आर्गनाइजेशन आर्थिक समृद्धि
को पूरा करने के लिए आज पूर्ण सुसज्जित

अपने विभिन्न प्रकार के उद्योगों के विकास
साथ ही जे० के० आर्गनाइजेशन नये प्रयासों
लगा है, ताकि अधिकाधिक रोजगारी के अवसर
प्राप्त हो, स्व-चालित अर्थ-व्यवस्था की ओर हम
अग्रसर हो सकें, जिससे नये युग का सूत्रपात

जे.के. ऑरगनाइज़ेशन

भारत का एक विशालतम औद्योगिक और व्यावसायिक

कानपुर • बम्बई •

सत्साहित्य-प्रकाशनट्रस्ट, बम्बईके लिए विश्वम्भरनाथ द्विवेदी द्वारा सम्पादित
एवं प्रकाशित तथा आनन्दकानन प्रेस, सीके. ३९/२० वाराणसीसे मुद्रित

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi